जैन-संवाद

अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ का मुख पत्र

अंक – 4

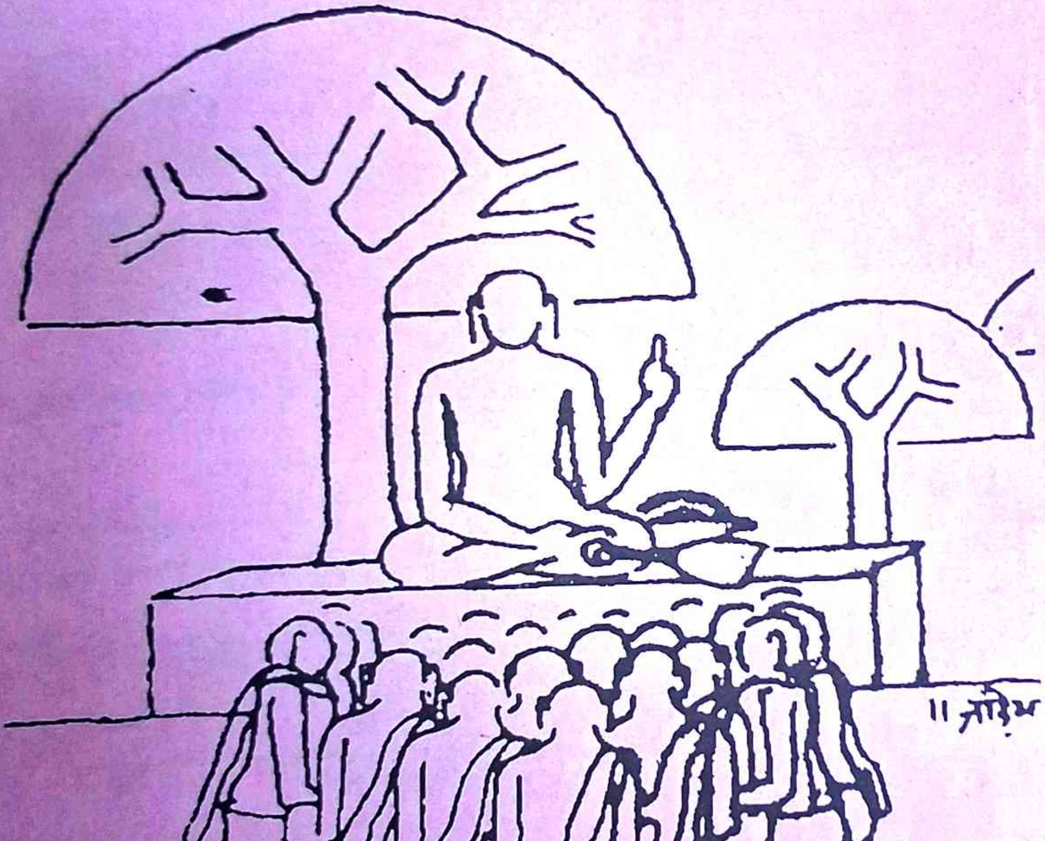

अप्रेल–2015

अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ

129, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा, जयपुर (राज.)
फोन : (0141) 2722274 मो. 07737241003, 09929655786

सदस्यता आवेदन पत्र

दो फोटों संलग्न करें।

पूरा नाम ....

पिता/पति का नाम ....

जन्म दिनांक .... शिक्षा.............ब्लड ग्रुप ....

पति/पत्नि का नाम ....

जन्म दिनांक .... शिक्षा ....ब्लड ग्रुप..............

विवाह तारीख .... निवास का पता ....

.... समाचार पत्र का नाम..

.......................ई मेल ....प्रकाशित प्रतियां ....

....प्रकाशन अवधि ....फोन नं०.......................मोबा नं० ......

....

आर.एन.आई. क्रं ....पोस्टल रजिस्ट्रेशन क्रं..............

डीएवीपी विज्ञापन दर..............................विभिन्न धार्मिक/सामाजिक ट्रस्ट या संस्था की सदस्यता एवं पद की जानकारी ....

.........................अन्य व्यवसाय यदि कोई हो तो..................................

....................................यदि किसी अन्य पत्रकार संघ के सदस्य हों तो जानकारी..पुत्र/पुत्रियों की जानकारी

....

1.

2.

3.

सदस्यता आवेदन पत्र के साथ आजीवन (1100/–) सदस्यता शुल्क रुपए ....
..................................नगदी/चेक/ड्राफ्ट क्रमांक.................... ....
बैंक...दिनांक ....का तथा हमारा पासपोर्ट साईज (2 प्रति) चित्र संलग्न है।

जैन-संवाद

अंक – चतुर्थ

(अप्रेल–2015, महावीर जयन्ती)

प्रधान सम्पादक :

रवीन्द्र मालव

सम्पादक मण्डल :

डॉ. सुरेन्द्र 'भारती', बुरहानपुर
डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता
डॉ. नरेन्द्र 'भारती', सनावद
अखिल बंसल, जयपुर

प्रकाशक :

अ. भा. जैन पत्र सम्पादक संघ

129, जादोन नगर–बी, दुर्गापुरा, जयपुर–302018
फोन : 0141–2722274, मो. 07737241003

प्रेस जनमत निर्धारण का सशक्त माध्यम है। अतः पत्रकार बंधुओं को अपना कार्य ट्रस्ट समझकर जनहित की सेवा और सुरक्षा की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हुए करना चाहिए। उसे मानवीय मूल्यों और सामाजिक अधिकारों का सतत आदर करते हुए अपने पेशे को पुनीत कर्तव्य मानकर निष्ठावान और न्यायनिष्ठ होना चाहिए।

अनुक्रमणिका

0 सम्पादकीय
  ❐ डॉ. सुरेन्द्र 'भारती' 3
0 अन्तिम तीथकर भ. महावीर
  ❐ आचार्यश्री विद्यासागरजी 5
0 महावीर या महाविनाश
  ❐ मुनिश्री तरुणसागरजी 9
0 महावीर दर्शन
  ❐ आचार्य महाप्रज्ञजी 11
0 महावीर का मार्ग अहिंसा एवं शांति
  ❐ काका कालेलकर 13
0 महावीर का जीवन दर्शन
  ❐ प्रा. नरेन्द्रप्रकाश 16
0 परिग्रह ही अनर्थ का मूल
  ❐ प्रवीणचन्द्र छाबड़ा 20
0 वर्द्धमान महावीर : जीवन एवं दर्शन
  ❐ डॉ. प्रेमचन्द रांवका 23
0 भ. महावीर की दृष्टि में वीतरागता
  ❐ डॉ. नरेन्द्र भारती 26
0 अहिंसा एवं विश्व शांति
  ❐ अखिल बंसल 28

मुद्रक :
प्रिन्टोमैटिक्स
स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा, जयपुर – 18
(0141) 2722274, मो. : 09929655786

राष्ट्रीय कार्यकारिणी 2015

सूरत/अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ का दो दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन 22 व 23 नवम्बर को आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। सर्वसम्मति से श्री रवीन्द्र मालव को अध्यक्ष चुना गया उन्होंने नवीन कार्यकारिणी का गठन निम्नप्रकार किया।

संरक्षक – श्री कपूरचंद पाटनी गोहाटी (जैन गजट), श्री डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता (दिशाबोध) श्री स्वदेशभूषण जैन, दिल्ली (पंजाब केसरी)

परामर्शदाता – श्री मिलापचंद डंडिया, जयपुर (राज.), डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, अमलाई, श्री महेन्द्रकुमार पाटनी, जयपुर (राज.)

अध्यक्ष – श्री रवीन्द्र मालव, ग्वालियर (म.प्र.)

कार्याध्यक्ष – अखिल बंसल, जयपुर (राज.)

उपाध्यक्ष – डॉ. संजीव भानावत, जयपुर

महामंत्री – डॉ. सुरेन्द्र भारती, बुरहानपुर

संयुक्त महामंत्री – डॉ. महेन्द्र मनुज, इन्दौर

संगठन मंत्री – पं. वर्द्धमान सोंरया, टीकमगढ़

प्रचार मंत्री – डॉ. राजीव प्रचण्डिया, अलीगढ़

कोषाध्यक्ष – जगदीशप्रसाद जैन, आगरा

सदस्य – डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर (उ.प्र.), श्री विजय जैन मुम्बई (महा.), डॉ. पी. सी. रांवका, जयपुर (राज.), शैलेष कापडिया सूरत (गुज.), श्री शांतिनाथ होतपेटे हुबली (कर्ना.), दिनेश दगड़ा, कोलकाता (पं. बंगाल), नवनीत जैन मेरठ (उ.प्र.), नरेन्द्र जैन अजमेर (राज.), पं. अशोक शास्त्री इन्दौर (म.प्र.), अकलेश जैन अजमेर (राज.), डॉ. नीलम जैनपुणे (महा.), डॉ. सुशीला सालगिया इन्दौर (म.प्र.), डॉ. ज्योति जैन खतौली (उ.प्र.)

विशेष आमंत्रित – डॉ. अनेकान्त जैन दिल्ली, ब्र. जिनेश मलैया इन्दौर।

सम्पादकीय

अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ

वर्तमान की जरूरत/भविष्य का विश्वास

विश्व वंदनीय तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के जन्मकल्याणक (जयन्ती) महोत्सव पर समस्त अहिंसक विश्व को हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। भगवान् महावीर ने जीवन में अहिंसा, समाज में अपरिग्रह और विचारों में अनेकान्तवाद का जो आदर्श समाज को दिया वह आज भी प्रासंगिक है, अनुकरणीय है। अतः उनका जन्मकल्याणक महोत्सव मनाना सार्थक है, उपयोगी है।

'अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ' के गठन से लेकर अद्यावधि संघ का यह प्रयास रहा है कि सम्पादकों में समन्वय, सामंजस्य और सौहार्द बने तथा सभी संगठित होकर जैनत्व के ध्वजवाहक बनें। मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि संघ अपने उद्देश्यों में सफल रहा है। भविष्य में इस संघ–संगठन को और अधिक ऊँचाइयों पर ले जाने की हमारी भावना है। इसमें सभी जैन पत्र सम्पादकों का सहयोग अपेक्षित है।

संघ के द्वारा अब तक जो कार्य हुए हैं उसकी विस्तृत जानकारी तो जैन संवाद के प्रथम अंक से आपको प्राप्त हो ही गई है। दिनांक 17 एवं 18 मार्च 2012 को जयपुर के चूलगिरी में एवं 16 जून 2013 को कुन्दकुन्द भारती दिल्ली में पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज एवं मुनिश्री प्रज्ञसागरजी के पावन सान्निध्य में सार्थक कार्यशालाएं डॉ. संजीव भानावत के संयोजकत्व में आयोजित की गयीं। इसप्रकार संघ अपने कार्य में सजगता के साथ निरन्तर आगे बढ़ रहा है।

दि. 22–23 नवम्बर, 2014 को सूरत (गुजरात) में प.पू. आचार्य श्री सुनीलसागर जी महाराज के सान्निध्य में 'संघ' की नवीन कार्यकारिणी के निर्विरोध चुनाव सम्पन्न हुए थे जिसमें श्री रवीन्द्र मालव (ग्वालियर) को अध्यक्ष चुना गया था; उन्होंने अपनी कार्यकारिणी समिति में श्री अखिल बंसल (समन्वय वाणी) को कार्याध्यक्ष, मुझे (डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'– पार्श्व ज्योति) महामन्त्री, श्री जगदीशप्रसाद जैन (आगरा) को कोषाध्यक्ष मनोनीत करते हुए शेष पदाधिकारियों एवं सदस्यों की घोषणा की। अब यह हम सबका दायित्व है कि हम 'संघ' को आगे बढ़ायें। मैं सभी सदस्यों से सहयोग की अपील करता हूँ।

इसी कड़ी में दि. 11,12,13 अप्रेल, 2015 को श्री पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र करगुवां जी (झाँसी) में 'उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी' के तत्त्वावधान में पत्र सम्पादकों के साथ जैन अल्पसंख्यक, तीर्थ जीर्णोद्धार हमारी पत्रकारिता आदि विषयों पर संवाद/विचार–विमर्श का कार्यक्रम रखा गया है; जिसमें हमारे सभी सम्पादक सादर आमंत्रित हैं। दि. 13 अप्रेल, 2015 को समीपस्थ तीर्थक्षेत्रों की सामूहिक वंदना का कार्यक्रम भी बनाया गया है। मुझे विश्वास है कि इससे एक नयी कार्ययोजना सामने आयेगी। श्री शैलेन्द्र जैन (अध्यक्ष–उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी), श्री नवनीत जैन (मेरठ), श्री प्रवीण जैन (झाँसी) आदि के प्रयासों से बुन्देलखण्ड के जैनतीर्थों के विकास का जो बीड़ा उठाया गया है; अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ उसकी सराहना करता है तथा निरन्तर सहयोग की अपनी वचनबद्धता प्रकट करता है।

मेरा मानना है कि जैन पत्र सम्पादकों के ऊपर बहुत बड़ा दायित्व है। उन्हें हर हाल में नैतिक बने रहना है क्योंकि वह उनकी प्रतिबद्धता है। उनका जैनत्व के प्रति समर्पण जग जाहिर है, उनका साधनात्मक लक्ष्य जैनत्व का संरक्षण, संवर्धन, प्रचार–प्रसार है। वे अपने लेखन/सम्पादन द्वारा जो सामग्री अपने पाठकों को परोसते हैं वह हमारे देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा–भक्ति बढ़ाती है, तीर्थों को संरक्षित करती है, जैन प्रतिभाओं को प्रकाश में लाती है, जैनधर्म– दर्शन–साहित्य, ज्ञान, मनोरंजन, संस्कृति, समाज–चेतना की दिशा में विचारों को नयी भाषा, नयी शक्ल देकर समाज में उत्साह का संचार करती है। अतः हम जैन पत्र/पत्रिका सम्पादकों के प्रयासों की अनदेखी नहीं कर सकते। प्रायः मानद (अवैतनिक) सेवा के साथ इतना बड़ा जोखिम भरा और श्रमसाध्य कार्य करना अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। समाज को अपने लिए गौरव दिलाने जैन पत्र सम्पादकों (लेखकों, पत्रकारों) का यथोचित सम्मान/मार्गदर्शन/सहयोग करना चाहिए।

हम कलम के हैं सिपाही, जैनधर्म की कहते हैं।
हम नहीं मसीहा हैं, जो होता है सो लिखते हैं।।

इसी भावना के साथ मैं अपने सभी सम्पादक मित्रों को सादर आमंत्रित करता हूँ कि आओ, करगुवां जी में मिलो और कुछ अपनी कहो, कुछ मेरी सुनो। जय जिनेन्द्र।

— डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर

□ आचार्यश्री विद्यासागरजी

कौन कहां से आया कहां जाएगा, यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन आया है तो उसे जाना होगा, यह निश्चित है, यह सत्य है। हम आने की बात से हर्षित होते हैं और आने को महोत्सव के रूप में मनाते हैं। प्रेम के साथ अपनाते हैं। जाने की बात हमें रुचिकर नहीं लगती और जाने की बात हमें उदास कर देती है। यही हमारी नासमझी है। इस बात को हमें समझ लेना चाहिए कि आने जाने का प्रवाह निरन्तर है। भ. महावीर इस प्रवाह के बीच तटस्थ ही नहीं, बल्कि आत्मस्थ/स्वस्थ रहे, तभी वे वास्तव में महावीर बने।

महावीर बनने के लिए वास्तविकता का बोध होना अनिवार्य है। दिन और रात का क्रम अबोध है। उषा के बाद निशा और निशा के बाद उषा आयेगी। जो यह जान लेता है वह दोनों के बीच सहजता से जीता है। भ. महावीर का जीवन ऐसा ही सहजता का जीवन है। वे स्वयंबुद्ध थे, चिन्तक थे। जीवन के हर पहलू के प्रति सजग चिन्तन उनका था। जो हो चुका, जो हो रहा है और जो होगा सभी के प्रति सहज भाव रखना, यही वस्तु के परिणमन का सही आकलन है। जो स्वागत के साथ विदाई की बात जानता है, वह न स्वागत गान से हर्षित/प्रभावित होता है और न ही मृत्यु गीत से उदास/दुखित होता है।

जीवन क्या चीज है ? जीवन तो ऐसा है जैसे किसी के हाथ में कुछ देर कांच का सामान रहा, फिर क्षण भर में गिरकर टूट गया। जन्म हुआ और मरण का समय आ गया। साठ–सत्तर बरस पलभर में बीत जाते हैं। जो यह जानता है, वह समय का सदुपयोग कर लेता है। यही बुद्धिमानी है। यही सन्मति है।

कोई भी वस्तु यदि रुक जाए, परिवर्तित न हो तो वह वस्तु नहीं मानी जाएगी। वस्तु तो वही है जो प्रतिक्षण उत्पन्न और नष्ट होते हुए भी अपने स्वरूप में स्थित है। भ. महावीर की यात्रा भी अरुक थी। वह संसार में रुके नहीं, सतत बढ़ते ही गए। जो इस प्रवाहमान जगत में निरन्तर अपने आत्म स्वरूप की प्राप्ति की ओर बढ़ रहा है, वृद्धिंगत हो रहा है, वही वर्धमान है। उसका प्रतिक्षण नित–नवीन वर्तमान है।

महावीर भगवान अपने नाम के अनुरूप ऐसे ही वर्धमान थे। वे अपनी आत्मा में निरन्तर प्रगतिशील थे। वर्धमान चारित्र के धारी थे। पीछे मुड़कर देखना या नीचे गिरना उनका स्वभाव नहीं था। वे प्रतिक्षण वर्धमान और उनका प्रतिक्षण वर्तमान

था। उन्हें अपने खो जाने का भय नहीं था। जो शाश्वत है, जो कभी खो नहीं सकता, महावीर भगवान उसी के खोजी थे। उसी में खोने को राजी थे। उनका उपदेश भी यही था कि जो नश्वर है, मिटने वाला है उसे पकड़ने का प्रयास या उसे स्थिर बनाने का प्रयास व्यर्थ है। वास्तविक सुख तो अपनी अविनश्वर आत्मा को प्राप्त करने में है। यहां संसार में जो सुख है, उसके पीछे दुख भी है। संयोग के साथ वियोग लगा हुआ है। जो सुख–दुख के पार है, जो संयोग वियोग के पार है, उसका विचार आवश्यक है। उसका जन्म भी नहीं है, उसका मरण भी नहीं है, मानो एक आवरण है जो इधर का उधर हट जाता है और वह तो मृत्युंजयी है, वह हमेशा बना ही रहता है।

युद्ध के पूर्व अर्जुन को श्रीकृष्ण ने यही समझाया था कि जो कर्मयोगी है वह जन्म–मरण का विचार नहीं करता, वह तो जन्म मरण के बीच जो शाश्वत आत्मतत्व है उसका विचार करता है और कर्तव्य में तत्पर रहता है। जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है और जिसकी मृत्यु है उसका जन्म भी अवश्य होगा। यह अपरिहार्य चक्र है। इसलिए हे अर्जुन सोच में मत पड़ो। अपने धर्म का (कर्तव्य का) पालन करना ही इस समय श्रेयस्कर है। जन्म–मरण तो होते ही रहते हैं। हम शरीर की उत्पत्ति के साथ अपनी उत्पत्ति और शरीर के मरण के साथ अपना (आत्मा का) मरण मान लेते हैं क्योंकि अपनी वास्तविक आत्म सत्ता का हमें भान भी नहीं है। जन्म जयन्ती मनाना तभी सार्थक होगा जब हम अपनी शाश्वत सत्ता को ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य करेंगे और उसी की संभाल में अपना जीवन लगाएंगे।

भगवान महावीर स्वामी का कहना था कि यदि वस्तु को आप देखना चाहते हो या जीवन को परखना चाहते हो या कोई रहस्य उद्‌घाटित करना चाहते हो तो वस्तु के किसी एक पहलू को पकड़कर उसी पर अड़कर मत बैठो मात्र जन्म ही सत्य नहीं है और न मरण ही सत्य है। सत्य तो वह भी है जो जन्म–मरण दोनों से परे है।

जो व्यक्ति मरण से डरता है वह कभी ठीक से जी नहीं सकता। लेकिन जो मरण के प्रति निश्चिंत है, मरण के अनिवार्य सत्य को जानता है, उसके लिए मरण भी प्रकाश बन जाता है। वह साधना के बल पर मृत्यु पर विजय पा लेता है। संसार में हमारे हाथ जो भी आता है, वह एक न एक दिन चला जाता है यदि जीवन के इस पहलू को इस रहस्य को हम मान लें और आने जाने रूप दोनों स्थितियों को समान भाव से देखें तो जीवन में समता भाव (साम्यभाव) आए बिना नहीं रहेगा, जो मुक्ति के लिए अनिवार्य है।

जीवन के आदि और अंत दोनों की एक साथ अनुभूति हमारे पथ को प्रकाशित कर सकती है। हम शांत भाव से विचार करें और हर पहलू को समझने का प्रयास करें तो जीवन का हर रहस्य आपोआप उद्घाटित होता चला जाता है। अनेकान्त से युक्त दृष्टि ही हमें चिन्तामुक्त और सहिष्णु बनाने में सक्षम है। संसार में जो विचार वैषम्य है वह एकान्त पक्ष को पुष्ट करने के आग्रह की बजह से है। अनेकान्त का हृदय है समता। सामने वाला जो कहता है, उसे सहर्ष स्वीकार करो। दुनिया में ऐसा कोई भी मत नहीं है जो भगवान महावीर की दिव्य देशना से सर्वथा असंबद्ध हो। यह बात जुदी है कि परस्पर सापेक्षता का ज्ञान न होने से दुराग्रह के कारण मतों में, मान्यताओं में मिथ्यापन आ जाता है। हमें आज आत्मा के रहस्य को समझने के लिए अनेकान्त, अहिंसा और सत्य की दृष्टि की आवश्यकता है। वह भी वास्तविक (रीयल) होनी चाहिए, बनावटी नहीं। यदि एक बार यह ज्योति (आंख) मिल जाये तो मालूम पड़ेगा कि हम व्यर्थ चिन्ता में डूबे हैं। हर्ष–विषाद और इष्ट–अनिष्ट की कल्पना व्यर्थ है। आत्मा अपने स्वरूप में शाश्वत है।

भगवान महावीर अपनी ओर, अपने स्वभाव की ओर देखने वाले थे। वे संसार के बहाव में बहने वाले नहीं थे। हम इस संसार के बहाव में निरन्तर बहते चले जा रहे हैं और बहाव के स्वभाव को भी नहीं जान पाते हैं। जो बहाव के बीच आत्मस्थ होकर रहता है, वही बहाव को जान पाता है। आत्मस्थ होना यानी अपनी ओर देखना। जो आत्मगुण अपने भीतर है, उन्हें भीतर उतरकर देखना। अपने आपको देखना, अपने आपको जानना और अपने में लीन होना यही आत्मोपलब्धि का मार्ग है।

मैं कौन हूं यह भाव भीतर गहराता जाए। ऐसी ध्वनि–प्रतिध्वनि भीतर ही भीतर गहराती जाए; प्रतिध्वनित होती चली जाए कि बाहर के कान कुछ न सुनें। हमारे सामने अपना आत्मस्वरूप मात्र रहे तो उसी में भ. महावीर प्रतिबिम्बित हो सकते हैं। उसी में राम अवतरित हो सकते हैं। उसी में महापुरुष जन्म ले सकते हैं। यही तो भ. महावीर का उपदेश है कि प्रत्येक आत्मा में महावीरत्व छिपा हुआ है।

आत्मा अनन्त है। चेतना की धारा अक्षुण्ण है। आवश्यकता उसमें डुबकी लगाने की है। दर्पण में जैसे कोई देखे तो दर्पण कभी नहीं कहता कि मेरा दर्शन करो, वह तो कहता रहता है कि अपने को देखो। मुझमें भले ही देखो, पर अपने को देखो। अपने दर्पण स्वयं बनो। दर्पण बने बिना और दर्पण के बिना स्वयं को देखना संभव नहीं है।

गुणों की अपेक्षा देखा जाए तो भगवान और हममें समानता है, लेकिन सत्ता दोनों की पृथक्–पृथक् है। दो दर्पण हैं, समान हैं लेकिन एक दर्पण दूसरे में अपनी

निजता नहीं डालता। मात्र एक दूसरे की निजता को प्रतिबिंबित कर देता है। भगवान महावीर में हम अपने को देख सकें, यही हमारी बड़ी से बड़ी सार्थकता होगी। नदी पहाड़ की चोटी से निकलती है। चलते–चलते बहुत से कंदराओं, मरुभूमियों चट्टानों और गर्तों को पार करती है और अंत में महासागर में विलीन हो जाती है। हमारी जीवन यात्रा भी ऐसी ही हो। अनन्त की ओर हो ताकि बार–बार यात्रा न करना पड़े। संसार का परिभ्रमण रूप यह जन्म मरण छूट जाए। महावीर स्वामी ने आज की तिथि में जन्म लेकर जन्म से मृत्यु की ओर यात्रा प्रारंभ की जो अंत में मृत्युंजयी बनकर अनन्त में विलीन हो गई।

आत्मा को निरन्तर शरीर धारण करना पड़ रहा है। यही एकमात्र दुख है। शरीर से हमेशा के लिए मुक्त हो जाना ही सच्चा सुख है। अभी तो जिसप्रकार अग्नि लोह पिण्ड के संपर्क में आने से लोहे के साथ पिट जाती है, उसीप्रकार शरीर के साथ आत्मा घटी/मिटी तो नहीं है लेकिन पिटी अवश्य है। विभाव रूप से परिणमन करना ही पिटना है अपने आत्म स्वरूप से च्युत होना ही पिटना है। जन्म–मरण के चक्कर में पड़े रहना ही पिटना है। हम इस रहस्य को समझें और जन्म–मरण के बीच तटस्थ होकर अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयास करें। अनन्त सुख को प्राप्त करने का प्रयास करें।

भ. महावीर का तो जन्म अन्तिम था। उनकी मृत्यु भी अंतिम थी वे स्वयं भी अन्तिम तीर्थंकर थे। इसके पूर्व और भी 23 तीर्थंकर हुए सभी ने अपने आत्मबल के द्वारा अपना कल्याण किया और हमारे लिए कल्याण का मार्ग बताया। लेकिन हम इस जन्म–मरण के चक्र से स्वयं को निकाल नहीं पाए। हमारा जीवन धर्मामृत की वर्षा होने के उपरान्त भी अमृतमय नहीं हुआ है। जरा देर के लिए बाहर से भले ही अमृत से भीगा हो लेकिन भीतर तक भीग नहीं पाया।

भीतर तक भीगने के लिए अन्तर्मन की निर्मलता चाहिए। श्रद्धा भीतर ही अन्तर्मन को निर्मल बनाती है। भगवान महावीर की जयन्ती मनाकर अपने अन्तर्मन को निर्मल बनाने का प्रयास करें। पांच पापों से मुक्त होकर, कषायों को छोड़कर आत्मस्थ होने का प्रयास करें।

शरीर की बदलती हुई नश्वर पर्यायों में न उलझें। शरीर का बदलना तो ऐसा है कि जैसे पुराना वस्त्र जब जीर्ण शीर्ण होकर फटने लगता है तब उसे उतारकर दूसरा वस्त्र धारण कर लिया जाता है। ऐसे ही जब तक आत्मा संसार से मुक्त नहीं होती तब तक नई–नई पर्याय अर्थात् शरीर को धारण करती रहती है। यही शरीर का बंधन दुखदायी है, इस बंधन से मुक्त होना ही सुखकर है। यही आदर्श है। यही श्रेयस्कर है। यही प्राप्तव्य है।

महावीर या महाविनाश

□ मुनिश्री तरुणसागरजी

महावीर जयन्ती का प्रसंग है। चैत्र सुदी तेरस जैनियों के लिए इसलिए खास दिन है कि इस दिन एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया जिसने दुनिया के नाम अपने संदेश में कहा – 'जियो और जीने दो'। कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ के घर मां त्रिशला की कोख से जन्मा बालक वर्धमान से महावीर बन गया। आज जब सारा विश्व हिंसा, आतंक और युद्ध की यंत्रणा से गुजर रहा है, तब महावीर का अहिंसा का दर्शन जीवन और जगत को अनिवार्य हो जाता है।

भयावह विश्व को केवल अहिंसा ही बचा सकती है। विश्व का भविष्य अहिंसा है और अहिंसा जैनधर्म की पहचान है। आदर्श विश्व के निर्माण में महावीर की अहिंसा, अनेकान्त और अपरग्रिह जैसे सिद्धान्त आज भी उपयोगी हैं। आज परिस्थितियों ने हमें ऐसे दौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां से दो मार्ग फूटते हैं एक या तो हम महावीर को चुनें और दूसरा या फिर अपने महाविनाश के लिए तैयार रहें। आदमी बारूद के ढ़ेर पर बैठा है और अपनी तबाही को देख रहा है। हिंसा और आतंक से घिरी दुनिया में अमन चैन लाने के लिए महावीर का रास्ता ही एक मात्र उपाय है।

महावीर अतीत के भव्य स्मारक नहीं वरन वर्तमान के मार्गदर्शक तथा भविष्य के प्रकाश स्तम्भ भी हैं। वे अमृत पुरुष हैं। उन्होंने पूरे जीवन समाज को अमृत बांटा। महावीर कोई आकाश से अवतरित नहीं हुए थे। वे तीर्थंकर थे। तीर्थंकरों के क्रम में उनका चौबीसवां व अन्तिम नंबर था। तीर्थंकर मनुष्य के भीतर ईश्वर को तलाशते हैं। स्वयं ईश्वरत्व की आत्म भावना को जन्म देना तीर्थंकर महावीर की मौलिक साधना है।

मेरा तो मानना है कि आज दुनिया को किसी महावीर की सख्त जरूरत है। ऐसे महावीर की जो हिंसा, हत्या, बर्बरता, भ्रष्टाचार व कत्ल के घने अंधकार में अहिंसा, करुणा, सत्य व साधना के दीप जला सके। अहिंसा को उसकी सम्पूर्ण गरिमा और तेजस्विता लौटा सके। आज समय की मांग है कि महावीर के मंदिर में हर आदमी की पहुंच होनी चाहिए। वहां किसी के प्रवेश पर निषेध नहीं होना चाहिए। क्योंकि मंदिरों का निर्माण मनुष्य मात्र के लिए हैं पापी से पापी और अधम से अधम व्यक्ति को महावीर तक पहुंचने का हक देना होगा। तभी जैनधर्म

विश्व धर्म हो सकता है और किसी वजह से सामाजिक व्यवस्था से यह संभव न हो तो फिर महावीर को हर आदमी तक पहुंचना होगा। महावीर को मंदिरों से निकालकर चौराहे तक लाना होगा ताकि दुनिया उनके जीवन, संदेश और चर्या से वाकिफ हो सके। भ. महावीर को आज हमने मंदिरों में बिठा दिया है। जबकि उन्हें अपने आचार–विचार, व्यवहार और आचरण में लाना चाहिए था। महावीर किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, अपितु आचरण का नाम है। सदाचरण और सहिष्णुता के पथ पर चलकर ही उन तक पहुंचा जा सकता है।

मेरा मानना है कि महावीर ‘कभी’ के लिए नहीं, ‘अभी’ के लिए हैं और ‘सभी के लिए हैं। महावीर आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने जिन शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना की थी वे आज भी आदर्श विश्व के निर्माण में सहयोगी हैं। महावीर स्वामी के उपदेश अध्यात्म की दृष्टि से तो असाधारण हैं ही, राजनैतिक दृष्टि से भी उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। ‘मैं’ की मृत्यु ही ‘महावीर’ का जीवन है।

बीज की दृष्टि से महावीर और हममें कोई फर्क नहीं हैं। फर्क तो सिर्फ़ अंकुरण का है। उनका बीज अंकुरण होकर वृक्ष बन गया और हम बीज के बीज ही रह गए। बीज के धरातल पर हम एक जैसे हैं। जैनधर्म कहता है कि हर बीज में बरगद छुपा है। उसे पहचानो और प्रकट करो यही महावीर की वाणी का सार है।

महावीर का विश्वास कलम पर नहीं कदम पर था। उनके पास केवल वाणी का विलास नहीं था, जीवन का निचोड़ भी था। उनकी आस्था जातिगत भेदभावों से सर्वथा मुक्त थी। महावीर जन्म की अपेक्षा कर्म पर ज्यादा जोर देते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान बनता है। उच्च कुल में जन्म लेना तो एक संयोग मात्र है लेकिन कुलीन व्यक्ति के रूप में मरना वस्तुतः मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

महावीर के सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के व्रत एक आदर्श नागरिक बनने की आचार संहिता है। प्रेम, शांति और सद्भाव से भरा–पूरा जीवन चाहिए तो दुनिया को महावीर के पथ पर चलना ही होगा। आज इस बात की जरूरत है कि हम सिर्फ महावीर ‘को’ न मानें बल्कि महावीर ‘की’ भी मानें। यह ‘की’ ही वह की (चाबी) है जो आज की हर ज्वलंत समस्याओं का ताला खोलती है। आईये ! इस वर्ष की महावीर जयन्ती हम महावीर ‘की’ मानकर मनाएं और ‘महावीर मय’ हो जायें।

●

महावीर दर्शन

□ आचार्य महाप्रज्ञ

मैं महावीर हूं – महावीर की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि उन्होंने किसी दूसरे पर भरोसा नहीं किया। जो ईश्वर पर भरोसा करते हैं वे अपने आपको कमजोर मानते हैं। ईश्वर भला करेगा, ऐसा करेगा वैसा करेगा मैं स्वयं कुछ नहीं कर सकता, वही होगा जो ईश्वर की मर्जी होगी। महावीर ने कहा तुम अपने ईश्वर को जगाओ। ईश्वर तुमसे अलग नहीं है। जैसे तुम हो वैसे ही महावीर हैं। जैसे महावीर बने वैसे तुम भी महावीर बन सकते हो। यह आत्म विश्वास पैदा हो जाए तो जीवन में एक नया प्रकाश मिल सकता है। यह आत्म विश्वास शिक्षा के द्वारा मिल सकता है। अभ्यास के द्वारा उत्पन्न हो सकता है।

काम कम होता है। झगड़ा ज्यादा होता है। हर बात में इतना ज्यादा विवाद होता है कि काम गौण हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि व्यक्ति भावात्मक स्तर पर विकसित नहीं है। जो व्यक्ति अपने आपको ज्यादा विकसित और एडवांस मानते हैं, अग्रगामी और प्रगतिशील मानते हैं वे भावना के स्तर पर शायद इतने विकसित नहीं हैं। वे बौद्धिक हैं, उनमें सोचने समझने की क्षमता भी है, किन्तु भावना के स्तर पर वे विकसित नहीं हैं। जब तक व्यक्ति भावना के स्तर पर विकसित नहीं होता, तब तक आधा घंटे के स्थान पर दो घंटे लगते हैं और 10 घंटे भी लग सकते हैं। मनुष्य कितने घंटे काम करता है ? गणित यह है कि पूरे दिन 24 घंटे करने योग्य जरूरी काम चार से पांच घंटे से ज्यादा का नहीं होता। इससे ज्यादा काम किसी के पास नहीं होता। इससे ज्यादा वह काम कर ही नहीं सकता। कोई भी व्यक्ति अपनी मस्तिष्कीय शक्ति का 4–5 घंटे से ज्यादा का उपयोग कर ही नहीं सकता। यदि वह ज्यादा खींचतान का काम करता है तो वह बासी काम होगा ताजा काम नहीं होगा। काम तो थोड़े समय का ही होता है।

पहले दो है काम और अर्थ, अगले दो हैं धर्म और मोक्ष। जीवन के निर्माण का तीसरा सूत्र है – धर्म और मोक्ष के प्रति सम्यग्दर्शन जागे। धर्म के प्रति भी हमारा दृष्टिकोण सम्यक् होना चाहिए और मोक्ष के प्रति भी।

आज कुछ ऐसा लगता है, अर्थ का प्रभाव धर्म को छू गया है। अर्थ वाले जो लोग हैं वे धर्म भी अर्थ के द्वारा ही करना चाहते हैं। बहुत कमाया थोड़ा सा दान पुण्य कर दिया और स्वर्ग के लिए सीट रिजर्व हो गई। चाहे जैसे तैसे कमाए, बुरे

साधनों से कमाएं, दूसरों का गला काटकर कमांएं पर थोड़ा सा दान कर समझते हैं बस सब कुछ हो गया। उनसे कहा जाता है तुम गलत ढ़ंग से कमाते हो और थोड़ा दांन देकर अपने आपको धार्मिक मान लेते हो। तब इनका उत्तर होता है कोरे कमाते ही नहीं देते भी हैं वे देने में अटक जाते हैं। देने को धर्म मान लिया जाता है। धन से धर्म नहीं होता। यह जो माना जाता है कि धन खर्च करो धर्म हो जाएगा, यह उतना ही गलत है जितना कि मिट्टी खाओ प्यास बुझ जाएगी। कोई संबंध ही नहीं है। धर्म केवल आत्मा की शुद्धि है, विचारों और भावों की शुद्धि है अपनी आत्मिक पवित्रता है। धर्म से धन का कोई संबंध नहीं है। अगर धन से धर्म खरीदा जाएगा तो कम धनवान लोग स्वर्ग में ही जाएंगे। गरीबों के लिए नरक तैयार है। वे नहीं जाएगे। यह एक गलत दृष्टिकोण स्वीकृत हो गया। आज अनैतिकता को पोषण देने में यह सिद्धान्त भी कार्य कर रहा है। धनी सोचते हैं अगर हम बुराई से कमाते हैं तो धर्मशाला भी हम बनाते हैं, प्याऊ भी लगवाते हैं और अस्पताल भी बनाते हैं। आखिर करता कौन है ? यह गलत दृष्टि कोण बन गया है कि जैसे तैसे गलत साधनों से कमाओ और थोड़ा सा दान देकर यह मान लो कि सिद्धि हो गई और नरक टल गया। स्वर्ग तैयार है, धर्म के साथ जहां त्याग और तपस्या का दृष्टिकोण जुड़ा हुआ था वह गौण हो गया। दान और पुण्य का दृष्टिकोण मुख्य बन गया। यह एक भ्रांति बन गई। धर्म क्या है ? धर्म का सम्यक् दर्शन क्या है ? धर्म की एक छोटी सी परिभाषा बन गई – त्याग धर्म और भोग अधर्म। जितना–जितना त्याग, उतना–उतना धर्म और जितना–जितना भोग उतना–उतना अधर्म। धर्म का मतलब है – अर्थ और काम का समीकरण। इतने से ज्यादा अर्थ का उपयोग नहीं करूंगा इसका नाम है धर्म। ●

अहिंसा इंटरनेशनल पुरस्कार से सम्मानित

नई दिल्ली / पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज एवं मुनिश्री प्रज्ञसागरजी के पावन सान्निध्य एवं दिल्ली के स्वास्थ्य मंत्री सत्येन्द्र जैन के मुख्य आतिथ्य में अहिंसा इंटरनेशनल पुरस्कार प्रदान किए गए। शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष डॉ. श्रेयांसकुमार जैन को धर्मप्रभावना हेतु, डॉ. सुरेन्द्र भारती सम्पादक पार्श्व ज्योति एवं श्री प्रदीप जैन सम्पादक जैन प्रचारक को पत्रकारिता के क्षेत्र में पुरस्कृत किया गया। आपके अतिरिक्त पद्मश्री मुजफ्फरहुसैन, चन्द्रप्रकाश जैन, प्रा. निहालचंद जैन, सतीश जैन आकाशवाणी तथा मास्टर गौरवकुमार को भी पुरस्कृत किया गया। समारोह का संचालन ए.के. जैन एवं प्रताप जैन ने किया। इस अवसर पर चक्रेश जैन, डॉ. रमेशचन्द्र जैन, प्रो. वीरसागर जैन आदि भी उपस्थित थे।

महावीर का मार्ग : अहिंसा एवं शांति

□ काका कालेलकर

आज संसार की स्थिति विचित्र है। हिंसा से यदि कोई अधिक से अधिक डरते हैं तो वे आज के यूरोपियन हैं। प्रथम विश्वयुद्ध में हुए संहार और नाश को वे आज भी भूले नहीं हैं। उन्हें भय है कि यदि फिर से युद्ध की ज्वाला भड़क उठी तो हमें अपने सारे वैभव सारे मौज–शौक, भोग विलास, ऐश्वर्य से हाथ धोना पड़ेंगे। यूरोप का मनुष्य यह सोचकर कांप उठता है कि आज संस्कृति के नाम पर जिस वैभव विलास का आनन्द हम भोगते हैं, वह युद्ध होने पर नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। युद्ध को टालने के लिए वह अपने जीवन सिद्धान्तों को भूसे की तरह हवा में उड़ा देगा लेकिन इतना सब करने के बाद भी वह युद्ध को टाल नहीं सकेगा। इन्द्रिय परायण जीवन, भोग विलास, वासनाएं, लोभ, भय, महत्वाकांक्षा और परस्पर अविश्वास उसे शांति से बैठने नहीं देंगें। हिंसा से भयभीत बना हुआ यूरोप का मनुष्य सारी दुनिया को हिंसा की दीक्षा दे रहा है और मारने की कला का विकास करने के लिए जीवन की कई अच्छी शक्तियों को नष्ट कर रहा है। आज वह जिस युद्ध को टालना चाहता है उसी युद्ध को जोरों से खींचकर अपने निकट ला रहा है।

ऐसी विचित्र परिस्थिति में आज हम एक बार फिर भगवान महावीर के संदेश को उज्ज्वल बनाना चाहते हैं। इस धार्मिक संदेश को ग्रहण करने के लिए आज की दुनिया तैयार नहीं है। यह शांति का मार्ग तो है किन्तु इस मार्ग पर चलने में मनुष्य को अभी आनन्द नहीं आता। पहले वह दूसरे सारे मार्ग आजमाएगा और सब तरह से हारने के बाद ही लाचारी से इस मार्ग पर आएगा।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह ऐसे उपायों पर विश्वास रखकर उन्हें पहले आजमाता है, फिर जिनमें कोई सार नहीं होता। आज यूरोप में जो अनेक मार्ग सुझाए जाते हैं उन पर हमें आश्चर्य होता है। हमारे यहां के पुराने लोग जब तर्क और न्यास, दर्शन और मीमांसा की बात को ले बैठते हैं और (घटत्व और पटत्व अवच्छेदकावच्छिन्न) दार्शनिक क्लिष्ट भाषा का पिष्टपेक्षण करते हैं, तब हम उन पर हंसते हैं और कहते हैं कि जिनका जीवन के साथ कोई संबंध नहीं, तत्व से जो सर्वथा दूर हैं, ऐसी निरर्थक बातों की चर्चा में ये लोग क्यों पड़ते होंगे ? हम कहते हैं कि उनकी इन बातों में जीवन को स्पर्श करने वाला थोड़ा भी अंश नहीं

होता। यूरोप में भी जब लोग व्यक्तिवाद और समष्टिवाद, समाजवाद और साम्यवाद आदि की चर्चा करते हैं, तब मन में विचार आता है कि इन अनेक 'वादों' से क्या लाभ होने वाला है ? मनुष्य जब तक अपने स्वभाव और जीवन में परिवर्तन न करे तब तक हम कोई भी 'वाद' क्यों न चलाएं अंत में हम वहीं पहुंचेंगे जहां पहले थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि जगत का सुख संधिवात (गठियारोग) जैसा है। ऊपर के लेप से वह मिटने वाला नहीं है। सिर से उसे निकालो तो वह कंधे में धंस जाता है। वह अपना स्थान तो बदलता रहेगा, लेकिन शरीर को नहीं छोड़ेगा। आप यदि व्यक्ति वाद को चलायेंगे तो दुनिया को एक प्रकार का दुख भोगना पड़ेगा।

व्यक्तिवाद के स्थान पर यदि आप समष्टिवाद को स्वीकार करेंगे तो पुराने दुख मिटाकर उनके स्थान पर नए दुख पैदा हो जायेंगे। जकात को टालने के लिए रात भर जंगल में भटकने के बाद सबेरे गाड़ी जब रास्ते पर आयी तो ठीक जकात नाके के सामने ही। जकात के पैसे तो चुकाने ही पड़े, ऊपर से रात भर जंगल में व्यर्थ भटके सो अलग। यही दशा आज की दुनिया की है। आचार्य एल.पी. जेक्स ने ठीक ही कहा है कि आज की दुनिया सम्पत्ति को सामाजिक बनाना चाहती है, राजसत्ता को सामाजिक बनाना चाहती है, किन्तु मनुष्य को और उसके स्वभाव को सामाजिक बनाने की बात उसे नहीं सूझती। जब तक यह नहीं होता तब तक किसी भी 'वाद' की सच्ची स्थापना नहीं होगी और यदि मनुष्य का चरित्र सुधर गया तब तो किसी भी 'वाद' से हमारा काल चल जाएगा।

शराब की बुराई से आज सारी दुनिया त्रस्त है। अमेरिका ने कानून बनाकर इस बुराई को दूर करने का प्रयत्न किया। जिन लोगों ने कानून बनाने की सम्मति दी उन्हें स्वयं शराबबंदी की कोई परवाह नहीं थी। समाज में प्रतिष्ठा भोगने वाले बड़े–बड़े स्त्री–पुरुष भी खुलेआम कानून को भंग करने में बहादुरी मानने लगे और एक दूसरे के सामने इस बात की डींग हांकने लगे कि उन्होंने शराबबंदी का कानून कैसे तोड़ा ? इसी शराब के लिए हमारे देश में नफरत है। नियमित रूप में और खुलेआम शराब पीने वाले लोग भी यह स्वीकार करते हैं कि शराब बुरी चीज है उससे छूटने की शक्ति भले ही उनके भीतर न हो, लेकिन इसमें कोई मदद करे तो वे निश्चित रूप से शराब की लत से मुक्त होना चाहते हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र का चरित्र शराबबंदी के पक्ष में होने के कारण हमारे देश में शराबबंदी का कानून बनाना आसान साबित हुआ कुछ आधुनिक वृत्ति वाले विकृत लोग शराब के पक्ष मे दलील करते हैं सही, लेकिन ऐसे लोग तो इने गिने ही हैं और उनमें से कुछ तो यह कहते भी हैं कि अपनी पार्टी की नीति के नाते ही ऐसी दलील करते हैं। ऐसे लोगों की

बात हम छोड़ दें मुझे कहना तो यह है कि यदि हम राष्ट्र के चरित्र का विकास कर सकें तो किसी भी 'वाद' की समाज रचना में हम मनुष्य जाति को सुखी बना सकेंगे।

महावीर जैसे संत पुरुषों ने संसार को यह मार्ग दिखाया है। चरित्र बल बढ़ाओ, संयम सिद्ध करो, वासनाओं को जीतो, असामाजिक वृत्तियों का नाश करो और राग द्वेष में निहित हीनता को पहचान कर दोनों को हृदय से निकाल फेंको, तो हिंसा का मार्ग अपने आप क्षीण हो जायेगा। यदि हिंसा को टालना है और अहिंसा की स्थापना करनी है तो केवल राजतंत्र को बदलने से यह ध्येय सिद्ध नहीं होगा, राष्ट्रसंघ की रचना से यह समस्या हल नहीं होगी, इसके लिए तो मनुष्य के स्वभाव में सुधार करना होगा। संयमरूपी तप करना होगा। यही सच्ची साधना है। कोई पामर मनुष्य यह कार्य नहीं कर सकता। बाहरी शत्रु से लड़ना आसान है किन्तु भीतर के विकारों का नाश करना कठिन है। इसके लिए वीरत्व की आवश्यकता होती है। महावीर ने अपने भीतर जिस शक्ति का विकास किया उसे दुनिया को दिखा दिया।

महावीर स्वभाव से ही प्रयोग वीर थे। उन्होंने जो अनेक प्रयोग किए थे, उन्हें हम तप कहते हैं। उस तप का मार्ग सबके लिए एक सा नहीं हो सकता। प्रत्येक मनुष्य को अपना प्रयोग करना चाहिए और अपना मार्ग खोज लेना चाहिए। जो मनुष्य प्रयोग नहीं हैं, वह यदि बिना सोचे विचारे महावीर के वचनों के अनुसार केवल बाह्य जीवन ही जीने का प्रयत्न करेगा, तो उसे महावीर की सिद्धि नहीं मिलेगी। इसके विपरीत जो मनुष्य महावीर से प्रेरणा लेकर और उनके प्रयोगों के रहस्य को समझकर उनके मुख्य जीवन सिद्धान्तों के अनुसार अपना जीवन बनाने के लिए निजी ढंग का स्वतंत्र प्रयोग करेगा, वही महावीर परम्परा का माना जायेगा और भगवान महावीर उसी को अपना आत्मीय जन समझेंगे।

आज जब संसार अनेक दृष्टियों से व्याकुल हो उठा है तब इस व्यापक जीवन की मुख्य उलझन का हल ढूढ़ना जरूरी हो गया है। इसके लिए महावीरों की आवश्यकता है, प्रयोगवीरों की आवश्यकता है। ऐसे लोग अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनाने के लिए महावीर के जीवन को समझेंगे और स्वयं ही ऊंचे उठने का प्रयत्न करेंगे। महावीर के स्मरण और चिन्तन से हम ऐसी प्रेरणा प्राप्त करें और अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का उद्धार करें, यही आज की महती आवश्यकता है।

●

महावीर का जीवन दर्शन

□ प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन

भगवान महावीर हमारे आराध्य हैं और अपने आराध्य के प्रति जिज्ञासा सभी प्राणियों में होती है; भ. महावीर के संदर्भ में भी इच्छा होना स्वाभाविक है, परन्तु एक प्रश्न हमारे मन में भी अवश्य उठता है कि हम उन्हें क्यों जानना चाहते हैं ? जब हम अपने निकटस्थों से इस विषय में चर्चा करते हैं तो तीन कारण सामने आते हैं –

1. हम सभी महावीर की संतान हैं। दूसरों को यह बताने में हमें गर्व की अनुभूति हो, पहला उत्तर या कारण यह हो सकता है। 2. उनके बताए हुए मार्ग के बारे में जानकर उसकी कसौटी पर दूसरों को कसें और यह कहकर उनकी खिल्ली उड़ा सकें कि तुम कैसे महावीर के बेटे हो जो आपस में लड़ते, झूठ बोलते या चोरी करते हो और उनसे जरा भी नहीं डरते। 3. हम उन्हें इसलिए जानना चाहते है ताकि हम स्वयं उनके बताए हुए मार्ग पर चल सकें और स्वयं उन सरीखा बन सकें। आचार्य उमास्वामी ने भी **'वन्दे तदगुणलब्धये'** की बात कही है। इन तीनों उत्तरों में से अंतिम उत्तर ही समीचीन है। भगवान महावीर ने स्वयं को सुधारने या संभालने के लिए कहा है, दूसरों की जांच परख करने के लिए नहीं। एक कवि ने कहा है –

अरे सुधारक जगत की, चिन्ता मत कर यार।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार।।

दूसरों की परख करते रहने से निन्दा रस का सुख तो मिल सकता है, आत्मानन्द नहीं। **'आदहिदं कादव्वं'** की नीति ही हमारा आदर्श होना चाहिए। कहा भी है **'तव सपर्यास्तवाज्ञा परिपालनम्'** अर्थात् भगवान की पूजा उनकी आज्ञाओं के परिपालन में है **'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'** बनने के लिए नहीं। भगवान हांड़–मांस से बने हुए किसी पुतले का नाम नहीं है, वह तो **'निजानन्द रसलीन'** एक अनोखे व्यक्तित्व का नाम है, कोई भी आराध्य केवल चर्चनीय और प्रशंसनीय ही नहीं होता, अनुकरणीय भी होता है।

हम यहां भ. महावीर के जीवन के बारे में नहीं, जीवन दर्शन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। जीवन और जीवन दर्शन में बड़ा अंतर है। जीवन तो दृश्य होता है, किन्तु जीवन दर्शन नयनगोचर नहीं होता। जीवन बहिर्जगत की घटनाओं का संकलन होता है और जीवन दर्शन अन्तर्जगत के रूपान्तरण को कहते हैं जीवन

तो विवादित हो सकता है, परन्तु दर्शन निर्विवाद है। भ. महावीर का जीवन भी निर्विवाद नहीं है। कोई उन्हें विवाहित मानता है कोई अविवाहित। किसी का मानना है कि वह अपने पिता की अकेली संतान थे तो कोई कहता है कि नहीं, उनके नन्दिवर्धन नाम के एक भाई भी थे। उनके जन्मस्थान, चातुर्मास एवं उपसर्ग आदि को लेकर भी भिन्न–भिन्न मत हैं। इसीलिए हम उनके जीवन की नहीं, जीवन दर्शन की चर्चा कर रहे हैं। जीवन दर्शन अविवादित, शाश्वत एवं सर्वहितकारी है।

भ. महावीर के जीवन दर्शन के चार आयाम हैं – अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह और अकर्तावाद। इन चार सिद्धान्तों को समझकर हम उनके जीवन दर्शन को समझ सकते हैं। इन्हें समझकर और आचरण में उतारकर हम ध्रुव, अचल और अनुपम सामर्थ्य को पहचान सकते हैं। घर, परिवार और राष्ट्र की समस्याओं के समाधान के उपाय हैं ये चारों सिद्धान्त। यहां प्रस्तुत हैं संक्षेप में उनका सार और स्वरूप।

अहिंसा : हिंसा शब्द का अर्थ है – किसी को मारना या सताना। इस शब्द से पूर्व 'अ' उपसर्ग लगाने से शब्द हो गया अहिंसा। 'अ' निषेध सूचक है। अतः उसका अर्थ हुआ किसी को न मारना या न सताना। यह इस शब्द का नकारात्मक पक्ष है। इसका एक सकारात्मक पक्ष भी है और वह है सबकी सेवा करना। किसी भी समझदार या भव्य प्राणी को अहिंसा के इन दोनों पक्षों को आचरण में उतारना चाहिए। किसी को न मारने या सताने मात्र से अहिंसा पूर्ण नहीं होती, पर सेवा भी आवश्यक है। एक दोहा है –

जब तू देख आंख से, अंधे आगे कूप।
अब तेरा चुप बैठना, है निश्चित अघकूप।।

अंधा जिस रास्ते पर जा रहा है, उसके सामने एक गड्ढा या कुआ है। उसे तो दिखता नहीं वह उसमें गिर सकता है। आंख वाले होते हुए भी यदि आप उसे बचाते नहीं हो तो आप हिंसा के दोषी हो। मैंने तो उसे नहीं गिराया, यह कहकर आप उसके दोष से बच नहीं सकते। द्रव्य हिंसा के दोष से बचने का तो यह एक बहाना हो सकता है, पर प्रमाद के कारण हिंसा भाव तो हो गई। किसी को मारने या पीड़ा देने से ही हिंसा का दोष नहीं लगता, अपितु किसी के मरने, गिरने अथवा मुसीबत में होने पर उसकी सहायता न करने से भी हिंसा का दोष लगता है। अहिंसा के दोनों पक्षों को अपने आचरण का अंग बनाने में ही आत्मा की सुरक्षा है।

भगवान महावीर ने मन वचन काय इन तीन योगों से या इनमें से किसी एक योग से जानबूझकर होने वाली भूल को भी हिंसा कहा है। सतत जागरण का नाम ही अहिंसा है। न किसी का बुरा सोचो, न किसी से बुरा बोलो, न किसी का बुरा करो। तीन योगों की सम्यक् प्रवृत्ति में धर्म निहित है।

अनेकान्त : संसार में वैचारिक मतभेद भी कभी–कभी कलह के कारण बन जाते हैं। मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना की उक्ति प्रसिद्ध ही है। सभी लोग किसी व्यक्ति या पदार्थ को देखकर उसके प्रति अपने–अपने स्वार्थ के अनुसार धारणा बनाते हैं। धारणा जब हठ का कारण बन जाती है तब वह विसंवाद का कारण बनती है। विसंवाद में भी संवाद बनाने की कला का नाम ही है अनेकान्त। भ. महावीर ने कहा है कि किसी भी घटना या विचार को केवल अपनी दृष्टि से ही नहीं देखना चाहिए। उसके पीछे की परिस्थिति या दूसरों की दृष्टि क्या है ? उसे भी समझना आवश्यक हैं। अनेकान्त का उद्देश्य ही है विभिन्न दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित करना। यह संशयवाद नहीं है, अपेक्षावाद है। अस्पताल में इलाज कराते हुए यदि किसी गरीब की मृत्यु हो जाए तो उसके घरवाले डाक्टर को भला बुरा बोलते हैं, कहते हैं कि इसने हमारे बच्चे को मार दिया। समझदार डाक्टर कटुवचन सुनकर भी उससे डाट डपट या झगड़ा नहीं करता बल्कि सोचता है कि इसके स्थान पर मैं और मेरे स्थान पर यह होता तो मेरे मुंह से भी गाली निकल सकती थी। ये अपशब्द पीड़ाजन्य परिस्थिति की उपज है। मुझे इसकी बात का बुरा नहीं मानना चाहिए। यथार्थ में अनेकान्त प्रतिकूलताओं और अनुकूलताओं में भी समता, सहिष्णुता को बनाए रखने का विज्ञान है।

अपरिग्रह : स्वाधीनता के वरण और दासता से मुक्ति का दूसरा नाम है अपरिग्रह। इसके दो भेद कहे गए हैं, एक वस्तुमूलक और दूसरा मूर्च्छामूलक। अधिक वस्तुओं के संग्रह की लालसा का होना परिग्रह का एक पक्ष है और उसके प्रति घोर ममत्व भाव का होना उसका दूसरा पक्ष है घोर ममत्व भाव घटाने पर महावीर ने अधिक जोर दिया है। भरत चक्रवर्ती अपार वैभव के स्वामी थे, परन्तु उस वैभव के प्रति उनके मन में लिप्तता का भाव नहीं था। शरीर से सम्पदा का भोग करते हुए भी वह विचार करते थे कि यह शरीर भिन्न हैं और आत्मा भिन्न है। संयम, सामायिक और बारह भावनाओं का चिंतवन वह यथासंभव करते रहते थे उन्हें यह पता था कि आयु पूरी होने के बाद वह तिनका भी अपने साथ नहीं ले जा सकते। सब कुछ यहीं छूट जाएगा। जो एक न एक दिन छूटना ही है उसके प्रति अधिक लगाव क्यों रखना, ऐसा विचार हर समय उनके मन में चलता रहता था। इसीलिए, शरीर, सम्पत्ति और संबंधियों से मूर्च्छा तोड़ने में उन्हें एक पल के लिए भी हिचक नहीं हुई। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रकट होना उनके जीवन की निर्लिप्तता का ही फल है।

परिग्रह से पुण्य क्षीण होता है। एक छोटे बच्चे की दुनिया मां की गोद और पालने तक ही सीमित होती है इसीलिए उसे सभी प्यार करते हैं। परिग्रहप्रियता

के अभाव में उसका पुण्य प्रबल होता है। जैसे–जैसे वह बड़ा होता है, वैसे–वैसे उसकी इच्छाएं बढ़ती जाती है। जवान होने पर तो उसकी लालसाएं आकाश छूने लगती हैं, उन्हें पूरा करने के लिए वह न जाने कितने छल छन्दों का सहारा लेता है। बढ़ती हुई हवस से वह चिन्ताग्रस्त रहने लगता है। बचपन में मिलने वाला प्यार दुलार सिकुड़ने लगता है। भ. महावीर ने कहा कि जो मिला है उसमें खुश रहो, चाह की दाह में मत जलो।

अकर्तावाद : भ. महावीर•ने कहा है कि प्राणी जीवन में जो कुछ भी सुख दुख पाता है, वह उसी के पूर्वकृत कर्मों का फल है अन्य कोई भी किसी को सुख या दुख नहीं दे सकता। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। अच्छे कार्य करने पर वह स्वर्ग जा सकता है और बुरे कार्य करने पर नरक में भी। वह स्वयं सर्वशक्तिमान है। हर आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। कहा भी है –

ज्यों तिल मांहि तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ में है, जाग सके तो जाग।।

परमात्मा सृष्टिकर्ता नहीं है और न परमात्मा पर किसी का एकाधिकार है। पामर से पामर व्यक्ति भी यदि सही दिशा में पुरुषार्थ करे तो वह परमेश्वर बन सकता है। यह सृष्टि स्वयं संचालित है जैसे वैधशाला से स्पूतनिक का संचालन होता है, वैसे ईश्वर से सृष्टि का संचालन होता है। परमात्मा को जगत का पिता कहा जाता है। पिता के लिए हर बेटा कृपा ~~का~~ पात्र है। वह किसी को दुख देने की बात तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। बेटा अपनी बुरी आदतों से स्वयं ही कष्ट पाता है। यह भ्रम है कि किसी अन्य ने उसे कष्ट दिया है। अच्छे कार्य करने का श्रेय व्यक्ति स्वयं को देता है और अपनी पीठ थपथपाता है तथा बुरे कार्य के बुरे फल का आरोप ईश्वर पर मढ़ देता है। भ. महावीर ने अकर्तावाद की उद्घोषणा कर **'अयोग्यः पुरुषो नास्ति'** का शंखनाद किया है। उन्होंने कहा कि हर नर में नारायण बनने की हर बीज में वृक्ष बनने की तथा हर वामन में विराट बनने की शक्ति निहित है।

भगवान महावीर के जीवन दर्शन के यही चार आयाम हैं। इन पर आचरण करने से इस धरती को स्वर्ग बनाया जा सकता है। आज की विषमताओं और कुण्ठाओं का कारण यही है कि व्यक्ति अपने सिद्धान्तों से भटक गए हैं। सिद्धान्तों से भटकाव ने दुनिया के वातावरण को विद्रूपताओं से भर दिया है। यदि हम इनसे त्राण चाहते हैं तो हमें इन सिद्धान्तों को अपनाना होगा। सिद्धान्तप्रिय व्यक्ति को शिव के समान तथा सिद्धान्तहीन व्यक्ति को शव के समान कहा गया है। ●

परिग्रह ही अनर्थ का मूल'

□ प्रवीणचन्द छाबड़ा

'अत्थम अणत्थमूलम' भ. महावीर की देशना में परिग्रह को अनर्थ का मूल बताते हुए स्पष्ट किया है कि अहिंसक रीति से नीति व न्यायपूर्वक अर्जित धन अर्थ की संज्ञा में आता है। परिग्रह परिमाण व्रत का विधान करके अर्थशास्त्र को सर्व हितकारी अहिंसक दिशा प्रदान की। चार पुरुषार्थ में धर्म के साथ अर्थ को पुरुषार्थ माना है। अर्थोपार्जन करें तो मर्यादा में हो, वैसे ही उसका व्यय भी मर्यादा में हो। राष्ट्र के लिए धन प्राप्ति मुनियों के कमण्डल के मुख की तरह की जावे तथा व्यय का मार्ग कमण्डल के जल निकास द्वार की तरह छोटा होना चाहिए। आय और व्यय में संतुलन सद्गृहस्थ के कर्तव्य हैं श्रावक के लिए उपार्जन की मर्यादा है। समृद्ध बनना और बनाना श्रावक के गुणों में है, लेकिन अपनी समृद्धि को बनाए रखना सबसे बड़ा गुण है। समृद्धि प्रदर्शन या उपभोग के लिए नहीं होती वरन् उपयोग के लिए होती है।

अमीरी हटाओ अजीब सा लगने वाला यह सूत्र अपने अर्थ में अधिक गहन, अपूर्व व अनुपम है। भ. महावीर की अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य और संयम के सम्यक् निर्देश को अत्यन्त संक्षिप्त संकेत में रूपांतरित कर देता है। जैन दृष्टि में अमीरी हटाओ का अर्थ अहंकार का मिट जाना है। 'मैं' का भाव नहीं रह जाता। लोकसत्ता भी वैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए होकर मनुष्य की प्रभुता के लिए हो जाती है। अमीरी भोग संस्कृति है, प्रदर्शन है, इच्छाओं का विस्तार है, मोहजन्य विकार है। अमीरी नशीली दौड़ है, शक्ति संचय की आकांक्षा है। अमीरी अहं की पुष्टि तथा अपनी भोगवृत्ति को कायम रखने के लिए ऐसा भ्रमजाल खड़ा कर लेती है कि किसी भी क्षेत्र की पवित्रता को खंडित कर देती है। अपरिग्रह के प्रतीक तपस्वी भी इसकी चपेट से नहीं बच पाते हैं। इतने व्यामोहित हो जाते हैं कि परिग्रही को ही धर्म रक्षक, समाजरत्न आदि उपाधियों से अलंकृत किए देते हैं। अमीरी को ही पुण्य फल मानकर अपने आपको भुलावे में डाल लेते हैं।

वास्तव में अमीर होना सम्पन्नता है, समृद्धि है। अमीर अपने संबंधों आचार व व्यवहार में आत्मीय होता है। वह किसी को हेय नहीं बनाता। उसकी समता ममता इतनी व्यापक होती है कि सबके लिए उसका हृदय खुला रहता है। उसका देना भी इतना चुपचाप होता है कि एक हथेली से दिए हुए को दूसरी हथेली भी नहीं

जान पाती है। धन सम्पदा व ऐश्वर्य सबके बीच रहकर भी वह अमीरी के लिए नहीं होता। वह अन्य से नहीं अपनी आंख से ही अपने को पहचानता हैं; मूल्यांकन करता है। अमीरी की अपनी परिधियां होती हैं वह जहां स्वामी होने का दंभ करती है वहीं उसका दासत्व होता है। वह देहस्थ होती है, उसका आकर्षण भी भौतिकी होता है। उसका हर संचय चिन्ता लिए होता है। हर सुविधा बांधती है और धीरे–धीरे अपना दास बना लेती है। हर नई वस्तु व अन्वेषण आकर्षण लेकर आता है और वही उबाऊ होकर भार बन जाता है। जैन दृष्टि में संसार को पकड़े रहना जीवन नहीं है जीवन पदार्थ नहीं है, यथार्थ है।

जो जैसा है उसे अपने स्वरूप और स्वभाव में रहना है। महावीर कहीं हस्तक्षेप नहीं करते। वे सम्पन्नता के लिए होते हैं। उनकी सम्पन्नता निज में निज की होती है। अन्य से लेना होता नहीं है। हर प्राणी का अपना सत्य होता है। जो लिया अथवा दिया नहीं जा सकता। हर चीज स्वतंत्र है। उसे जो बनना है वही बनने की क्षमता रखता है। जैन दृष्टि में किसी भी समाज या समूह का कोई सत्य नहीं होता है और न आदर्श स्थित होता है। समाज भेद की दीवार पर खड़ा होता है। जिसमें कोई द्वार नहीं होता। वह एक तरह के समान लक्ष्य को लेकर चलने वालों का ऐसा समूह होता है जहां विचार की प्रक्रिया, कोलाहलों, विश्वासों अथवा कर्मकाण्डों में उलझी रहती है। कोतुहल भरे प्रदर्शन ही प्रभावना होकर जीवन मूल्य बन जाते हैं। भेद की भाव भूमि पर ही अमीरी पोषण पाती है। उसका एकमात्र लक्ष्य अधिक से अधिक शक्ति का संचय व उपार्जन कर भौतिक उपलब्धियों को बटोरना और अपने मान को अन्य पर आरोपित करना है।

जैन चिन्तन में हर कर्म बंधन है। कुन्दकुन्दाचार्य की एक गाथा में स्पष्ट है जंजीर सोने की हो या लोहे की दोनों ही बांधती हैं। इसीप्रकार शुभ कर्म हो या अशुभ कर्म हो बांधते हैं दोनों ही बंधन है। कर्म राग से है और जब राग टूटता है तो विराग हो जाता है। लेकिन विरागी हो जाने पर भी अमीरी यानि किसीप्रकार की तृष्णा या शल्य रह जाता है तो वीतरागी नहीं हो पाते हैं। शुभ कर्म की परिणति अहम् के विसर्जन के लिए होती है तो राग से विराग की यात्रा का मंगलाचरण हो जाता है। पर ऐसा होता नहीं है। शुभ कर्म के उदय से पुण्य लाभ होता है और वह भौतिक सुख वैभव की ओर ले जाता है। मान–सम्मान का लोभ इतना तीव्र होता है कि अपने में अपने लिए होने और पहचानने की अपेक्षा अन्य में दिखने लगता है।

जैन दृष्टि शुभ और अशुभ के साथ पाप और पुण्य की परिभाषा करती है तो

वह देव आधारित नहीं होती। हर कर्म चुनौती बनकर आता है जिसका स्पष्ट अर्थ है कि हर व्यक्ति अपने शुभ और अशुभ कार्य के लिए स्वयं जिम्मेदार है। जड़ पदार्थों से कर्म फल का आकलन देह के प्रति आसक्ति है। रोग शोक, सुख–दुख देह के हैं, पदार्थ भी देह के लिए हैं। अमीरी के सारे कर्म देह को लेकर होते हैं इसलिए वह दैहिक होकर भोग को पुण्य व अधिकार माने रहता है। वह मंदिर और वीतरागी भगवान की मूर्ति में भी अतिशय स्थापित कर विभाजक रेखा खड़े किए रहता है। स्वर्ण मंडित होकर मंदिर भी देवालय से अधिक कामनाओं के पूरक बना दिए जाते हैं। जैन दृष्टि मात्र आदर्श या काल्पनिक नहीं है वरन् जीवन का यथार्थ दर्शन है। वह सम्यक् देखते और सम्यक् आचरण के लिए मार्ग निर्देश करती है। महावीर के दर्शन में समता ही धर्म की पर्याय है। हर प्राणी आत्मवत् है। अहिंसा जीवन की आधारशिला है। अपरिग्रह संयम, अचौर्य व सत्य स्तम्भ हैं। अमीरी परिग्रह है। अन्य को वंचित कर संचय करना हिंसा है। परिग्रह केवल वस्तुओं का ही नहीं होता, विचारों का भी होता है। वस्तुओं की पकड़ केवल देह की जकड़ है। जबकि विचार देह और आत्मा दोनों को जकड़ लेती है। इसलिए धन या वस्तुओं का अभाव होना अपरिग्रह नहीं है। ग्रहण या परिग्रह विचारों में होता है और वही क्रिया में आता है। अवसर मिलने के साथ आचरण बन जाता है। जैन चिन्तन 'मैं' को भीतर और बाहर से बदल देने का चिन्तन है। वह उन कारणों की खोज या निराकरण का मार्ग देता है जो अपरिग्रही बनाते हैं। महावीर के दर्शन में प्रमाद व परिग्रह भी हिंसा है, चोरी है। अमीरी के भाव में प्रमाद है और वही कर्म बंध का कारण है। ●

वाग्मिता पुरस्कार से सम्मानित

वात्सल्य रत्नाकर आचार्यश्री विमलसागरजी की 20वीं पुण्यतिथि के अवसर पर 19 दिसम्बर 14 को अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ के राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष एवं समन्वय वाणी के प्रखर सम्पादक अखिल बंसल तथा वीर निकलंक के सम्पादक श्री रमेश कासलीवाल, जैन जनवाणी के सम्पादक दिनेश दगड़ा तथा राजेन्द्र जैन 'महावीर' को पूज्य उपाध्यायश्री ऊर्जयन्तसागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में यमुना विहार दिल्ली में एवीएस फाउण्डेशन द्वारा वाग्मिता पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर 'सोशल मीडिया को समाजोपयोगी कैसे बनाएं' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन भी किया गया जिसमें प्रो. नलिन के. शास्त्री प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. ऋषभप्रसाद जैन लखनऊ ने की।

□२३ : जैन संवाद

वर्द्धमान महावीर : जीवन एवं दर्शन

□ **डॉ. प्रेमचन्द रांवका**

मानव के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन में प्रारंभ से ही श्रमण एवं वैदिक धाराओं का महान योग रहा है। ये दोनों ही धाराएं मानव के इह लोक के अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस की आधार शिलाएं हैं। आत्मोन्नयन के मार्ग में जिसने श्रम अर्थात् संयम, तप, त्याग और ज्ञान ध्यान पर बल दिया वह श्रमण धारा कहलायी। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस श्रमण धारा के सूत्र धार थे। ऋषभदेव ने भोगमूलक संस्कृति के स्थान पर कर्ममूलक संस्कृति की प्रतिष्ठा की। इन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत हुआ दैव वाद के स्थान पर पुरुषार्थवाद का पाठ ऋषभदेव ने ही पढ़ाया। इन्हीं ऋषभदेव की धर्मसभा में दिव्य ध्वनि सुनने देव, मनुष्य व तिर्यन्च उपस्थित हुए। चक्रवर्ती सम्राट भरत भी अपने पुत्र मरीचि के साथ दिव्य देशनार्थ पहुंचे। भगवान की दिव्य देशना से प्रभावित हो मरीचि ने संसार से विमुक्त होकर मुनि दीक्षा ले ली, परन्तु परीषह की अशक्ति से उनका पुरुषार्थ जबाब दे गया और सरल मार्ग अपना लिया। कुछ समय पश्चात् ऋषभदेव की पुनः धर्म सभा लगी। चक्रवर्ती भरत भी पहुंचे। भरत ने जिज्ञासावश निवेदन किया – हे भगवन् ! क्या इस समय इस धर्म सभा में कोई और भी ऐसी भव्य आत्मा है जो कालान्तर में तीर्थंकर पद प्राप्त करेगी। उत्तर में – अनन्त ज्ञान के धनी त्रिकालदर्शी भगवान ने सम्बोधित किया – सामने प्रवेश द्वार पर जो साधु खड़ा है और भव्य जीवों को प्रेरित कर इस धर्म सभा में भेज रहा है; वह तुम्हारा पुत्र मरीचि इस भरतक्षेत्र में और इसी अवसर्पिणी काल का 'महावीर' नाम वाला अंतिम तीर्थंकर होगा। वह इससे पूर्व प्रथम नारायण और चक्रवर्ती भी बनेगा।'

आत्मज के लिए भरत बहुत आनन्दित हुए। वे हर्षातिरेक में तुरंत यह समाचार देने साधु मरीचि के पास गए और गद्‌गद् उत्कंठ से बोले – 'मरीचि ! तुम धन्य हो तुम धन्य हो। तुम इस भरत क्षेत्र में अन्तिम तीर्थंकर बनोगे। यह शुभ संवाद स्वयं भगवान ने दिया है। सुनकर मरीचि खुशी के आवेग में उन्मत्त हो उछल पड़ा और लगा झूम–झूम चिल्लाने – 'मैं प्रथम नारायण, चक्रवर्ती और फिर अन्तिम तीर्थंकर बनूंगा।' इससे मरीचि का मद / अहंकार जाग उठा। साधु चर्या का कठिन मार्ग तो वह पहले ही छोड़ चुका था अब उसने परिव्राजक का वेष धारण कर भ. ऋषभदेव के समानान्तर स्वतंत्र मत स्थापित कर लिया। परिणामस्वरूप चारों गतियों में जन्म–मरण करता हुआ तीर्थंकरत्व से 10 भव पूर्व सिंह बन मृग का भक्षण कर रहा

था कि दो ऋद्धिधारियों के उपदेश से उसे आत्म बोध हुआ। कालान्तर में दो भव पूर्व मन्दमुनि की पर्याय में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया।

अगले भव में 16वें स्वर्ग में देव गति से चयकर वैशाली गणराज्य क्षत्रिय कुण्डग्राम में महाराज सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला की कोख से चैत्र शुक्ल 13 (598 ई.पू. 27 मार्च सोमवार उत्तरा फाल्गुनी) को जन्म लिया। उनके इस जन्म से सर्वत्र सुख शांति हो गई। राजकीय वैभव में पले अनेक चमत्कृत करने वाली घटनाओं के बीच वे वर्द्धमान हुए। पर जल कमलवत भिन्न रहकर आत्मलीन रहते। 30 वर्ष की युवावस्था में माता–पिता के विवाहादि आग्रह को अस्वीकार कर राज्य वैभव के सुख को तृणवत त्यागकर दिगम्बर हो गए और वैराग्य पथ पर चल पड़े। 22 वर्ष की अखण्ड मौन साधना से पूर्व कर्मों की निर्जरा कर कैवल्य को प्राप्त किया। वे अतीन्द्रिय ज्ञान के धनी लोकालोक के ज्ञाता दृष्टा हो महावीरत्व को प्राप्त हुए।

दिव्य ज्ञान होने पर भी ज्ञान के योग्य संवाहक के अभाव में 65 दिन तक महावीर की वाणी मुखरित नहीं हुई। इन्द्र ने इस रहस्य को समझ अपने वाक्‌चातुर्य से (त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं) से युक्तिपूर्वक स्वाभिमानी वैदिक विद्वान इन्द्रभूति गौतम को धर्मसभा में ले आए। उत्तुंग मानस्तम्भ पर वर्द्धमान महावीर के सौम्य वीतरागी व्यक्तित्व को देखते ही गौतम को आत्मानुभूति हुई। उनके अज्ञात और अहंकार निशा का अन्तिम प्रहर समाप्त हो गया और वे महावीर के परम भक्त बन गए। विचारों की निर्मलता और परिणामों की शुद्धता से उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया। गौतम जैसे योग्य शिष्य के उपस्थित होते ही महावीर का दिव्य संदेश ओंकारमयी निरक्षरी भाषा में प्रारंभ हुआ; जिसे गौतम ने ग्रहण कर प्राणीमात्र की भाषा में जन–जन तक पहुंचाया। यह क्रम 30 वर्ष तक चलता रहा। संवाद सम्प्रेषण की इससे बड़ी तकनीक क्या हो सकती है ? वीतरागी सर्वज्ञ बनने के बाद महावीर 30 वर्ष तक मुक्ति अर्थात् परम सुख का मार्ग जगत के जीवों को बताते रहे। अपनी दिव्य देशना की त्रिरत्नों की त्रिवेणी में जन–जन को आप्लावित किया। 'आत्मवत सर्वभूतेषु' समस्त जीवों में आत्मवत दृष्टि रखने वाले महावीर ने निरपेक्ष भाव से समस्त लोक को अपनाया। उनके साम्य भाव में आर्य–अनार्य, साधु–साध्वी, देव–देवांगनाएं, स्त्री– पुरुष, पशु–पक्षी सब समान रूप से शरण पाते थे। सभी जीव परस्पर प्रेमानुभव करते और समान आत्मा का अनुभव करते।

इसी मध्य गौतम के अनुज वायु भूति जो महावीर के गणधर थे को मुक्ति मिली। इस घटना ने गौतम के मन को उद्वेलित कर दिया। उन्होंने महावीर से प्रश्न किया – मुझमें और क्या कमी है, जो मेरी मुक्ति में बाधक है ? महावीर का उत्तर था

'तुम्हारे अन्तर्मन में मेरे व्यक्तित्व के प्रति अति सूक्ष्म राग विद्यमान है। राग तो आग है जिसमें जगत के जीव अनादिकाल से झुलस रहे हैं राग का अंश तो बुरा है। जब तक राग की आग नहीं बुझती, तब तक वीतरागता कैसे प्रकट हो और मुक्ति कैसे मिले। गौतम को उत्तर मिल गया, किन्तु उनका अन्तर्मन शांत नहीं हुआ। उनके मन में मुक्त होने के तीव्र भाव जो विद्यमान था। महावीर ने कहा – गौतम ! व्यग्रता से काम नहीं चलता। प्रारब्ध को भोगना ही होगा। गौतम ने सुना कि महावीर के निर्वाण के बाद उनकी पार्थिव देह विलुप्त हो जावेगी, गौतम के अन्तर्मन के राग के तंतु टूटेंगे और हुआ भी यही कार्तिकी अमावस्या 15 अक्टूबर मंगलवार को प्रातः महावीर को निर्वाण तो सायं गौतम को कैवल्य की प्राप्ति हुई।

आचार में अहिंसा, विचारों में अनेकान्त वाणी में स्याद्वाद कर्मवाद, साम्यवाद अपरिग्रह को जिस पावन धारा में तुमुल वेग प्रवाहित किया, उसमें निमज्जित होकर मानव युग–युग तक स्थायी शांति और अमरत्व को प्राप्त करता रहा है। अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह महावीर के जीवन दर्शन की मुख्य रीढ़ हैं।

महावीर के अनुसार किसी के प्राणों का वियोग करना ही हिंसा नहीं, अपितु दिल दुखाना भी हिंसा है। संकल्पी हिंसा कभी वैध नहीं। जो अपने प्रतिकूल है उसे दूसरे के लिए भी न करो। द्रव्य और भाव हिंसा से तीव्र कषाएं पैदा होती हैं। महावीर ने अपने समय में धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा का विरोध किया। महावीर की अहिंसा में विरोधी प्रकृति के जीव भी एक स्थान पर विचरते थे।

महावीर ने एकान्तवाद का विरोध किया। उनके अनुसार वस्तु अनेक धर्म रूपा है। उनकी कथन शैली है स्याद्वाद। जो हमें समताभाव और सहिष्णुता देता है। आग्रह से मुक्ति मिलती है। विचारों में विषमता समाप्त होती है। समता ही जीवन है।

महावीर का कर्मवाद प्राणीमात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देता है। प्रत्येक प्राणी अपने सुख–दुख, जीवन– मरण, उत्थान–पतन, शुभाशुभ कर्मों का कर्ता–भोक्ता स्वयं है। क्रोधादि कषाएं आत्म प्रदेशों के साथ मिल कर आत्म स्वभाव को मलिन कर देती हैं। कर्म बंधन से मुक्ति के लिए कषायों पर विजय पाना आवश्यक है। 'महावीर का जीवन दर्शन पावन मन्दाकिनी सदृश है; जिसमें अवगाहन और स्नान से तन और मन दोनों पवित्र हो जाते हैं। उनका दर्शन अहिंसा, संयम, और तप के उत्कृष्ट रूप धर्म को धारण करता है, जिस धर्म को देवता भी प्रणाम करते हैं। वह धर्म उत्कृष्ट मंगल स्वरूप है।

भगवान महावीर की दृष्टि में वीतरागता

□ **डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'**

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में अपने निष्कलंक व्यक्तित्व से जिन्होंने जनमानस को प्रभावित कर उदात्त मानवीय मूल्यों की चेतना का संचार किया उनमें जैन श्रमण परम्परा के 24वें तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी का नाम अग्रगण्य है। ईसा की 6 वीं शताब्दी में मानव समाज में अशान्ति और असंतोष का चारों ओर बोलवाला था। धर्म के नाम पर याज्ञिक हिंसा होती थी। ऐसी परिरिथितियों में भगवान महावीर स्वामी ने लोगों को धर्म का सच्चा स्वरूप बताकर सद्मार्ग अपनाकर सुख शांति के साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों का पालन करते हुए सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए आत्म कल्याण करने का सच्चा मार्ग दिखाया जिसे जैन परम्परा में मोक्ष की प्राप्ति कहा जाता है।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को निरन्तर पुरुषार्थ करना पड़ता है। भगवान महावीर स्वामी के जीव ने भी संसार की लम्बी यात्रा की। अनेक बार जन्म–मरण कर विभिन्न गतियों में घूमे। दिगम्बर परम्परा के अनुसार पुरुरवा भील से लेकर भगवान महावीर होने तक के 33 भवों का तथा श्वेताम्बर परम्परा में 22 भवों का उल्लेख किया है। जिसमें भगवान महावीर बनने से पूर्व के 10 भव पूर्व से वह परिवर्तित यात्रा आरंभ होती है जो कर्मानुसार शुभ कर्म की प्रवृत्ति है। ई. पू. 599 में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को जन्म लेने के उपरान्त कठोर तपस्या के द्वारा कर्मों का क्षय (नाश) कर जनमानस को धर्मोपदेश देकर आपने जीवन जीने की कला लोगों को सिखाई और धर्म को मानव जीवन के लिए आवश्यक बताया। आपकी दृष्टि में धर्म को धारण किए बिना मुक्ति (मोक्ष) असंभव है।

भगवान महावीर की दृष्टि में आत्मा सर्वोत्तम पदार्थ है। यदि आत्मा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के मार्ग पर चले तो उसकी सांसारिक जीवन से मुक्ति संभव है। जगत के कर्म बंधनों से छुटकारा पाना मानव का ध्येय बने इसके लिए भ. महावीर स्वामी ने बताया कि नियमित परमात्मा की आराधना करो। परमात्मा की यदि कोई पहचान है तो वह है वीतरागता। जिस जीव का संसार से राग समाप्त हो जाता है वह वीतरागी बनकर परमात्मा की श्रेणी में आ जाता है। कर्म बंधन से मुक्त जीव परमात्मा है। जैन दर्शन में अर्हन्त और सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। अर्हन्त और सिद्ध को छोड़कर कोई परमात्मा नहीं है ऐसा मन से

सोचना, वचन से बोलना और काय से श्रद्धान रखना जिन (परमात्मा) में आस्था रखना है। मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यक् श्रद्धान सबसे पहले जरूरी है। योगसार में कहा गया है –

जिन सुमिरो जिन चित्त, जिन ध्यावो मन कर शुद्ध।
लहो परम पद क्षपक में, होकर के प्रतिबद्ध।।9।।

शुद्धभाव से जिनेन्द्र का स्मरण करो, जिनेन्द्र का ध्यान करो, ऐसा करने से एक क्षण में परम पद प्राप्त हो जाता है। भावपाहुड़ में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं – **णाणम्म विमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।**
बाहिजमीक्षवेयणडाह विमुक्का सिवा होंति।।25।।

अर्थात् भव्यजीव शुद्ध भाव से ज्ञानमयी निर्मल जल को पीकर व्याधि, जरा, मरण की वेदना की दाह से छूटकर शिवरूप हो जाते हैं। लेकिन यह तभी संभव है जब जीव सम्यक्त्व सहित हो। बिना सम्यक्त्व के कर्म बंधन से नहीं छूटते। जरा–मरण–जन्म नहीं छूटते। अतः सभी को यह जानना चाहिए कि भवगान महावीर के धर्म में वीतरागता ही सर्वोपरि है। वीतरागता के बिना कर्म बंध नहीं छूटते इसलिए सरागता का धर्म में कोई महत्व नहीं है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं – **वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।**
देवतायदुपासितदेवतामूढ़ मुच्यते।।

अर्थात् इष्ट (प्रिय) पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा से इच्छावान होता हुआ जो पुरुष राग और द्वेष रूपी मैल से मैले देवताओं की पूजा करता है वह देवमूढ़ता का आराधक, मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहलाता है। इसलिए जो ऐसा कहते हैं या श्रद्धान रखते हैं कि सभी देव वंदनीय हैं। सभी देवों को मानना पूजना चाहिए वे लोगों को सम्यक्त्व से विमुख करने का घोर पाप करते हैं। आज देखा यह जा रहा है कि व्यक्ति श्रमण धर्म में विकृति पैदा कर हरिहरादि, विभिन्न देवी–देवताओं, क्षेत्रपालादि की पूजा कर मनौती मांगने हेतु प्रेरित करते हैं। कई व्यक्ति परमात्मा अरहंत सिद्ध की कम सरागी देवी–देवताओं को प्रसन्न करने में ज्यादा लगे रहते हैं यदि इतनी ही पूजा भक्ति अरहंत और सिद्ध भगवान की करें तो ज्यादा सुख पा सकते हैं। भगवान महावीर का दिगम्बर धर्म किसी भी वस्त्रधारी की पूजा–उपासना की बात नहीं करता वह तो वीतरागी देव की उपासना, पूजा भक्ति पर जोर देता है। जैनधर्म की शाश्वत पहचान दिगम्बरत्व है जिसे कोई नकार नहीं सकता। अतः हम सभी यह संकल्प लें कि हम वीतरागता के ही उपासक हैं, रहेंगे और वीतरागता के मार्ग पर ही चलेंगे। यही भाव भगवान महावीर स्वामी के प्रति हमारी समर्पण भावना का परिचय कराएगा। ●

अहिंसा और शान्ति

□ अखिल बंसल

'अहिंसा परमो धर्मः' अर्थात् अहिंसा ही परमधर्म है। अहिंसा तीन अक्षरों से मिलकर बना है, किन्तु इसकी व्यापकता महामुनि विष्णुकुमार के तीन चरणों से भी अधिक है। मानव जगत ही नहीं, अपितु विश्व के जितने भी चार–अचर प्राणी हैं वे सभी इन तीन चरणों में समाहित हैं। जहाँ अहिंसा है वहाँ जीवन है। यदि हम व्यापक दृष्टिकोण से विचार करें तो अहिंसा के अभाव में जीवन का सद्भाव ही सम्भव नहीं है। संसार की कोई भी चल–अचल वस्तु या जीव बेकार नहीं हैं, उनका संवर्द्धन करना ही अहिंसा है। अहिंसा वह शाश्वत सत्य एवं जीवन का अनिवार्य सिद्धान्त है जिसके बिना जीवन शून्य है। अहिंसा की मूल भावना प्राणीमात्र को जीने का अधिकार प्रदान करती है।

यह तो नितान्त सत्य है कि विश्व में जितने भी जीव हैं सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सभी को अपना जीवन अतिप्रिय है और अपनी अतिप्रिय वस्तु को कोई भी नष्ट होते नहीं देख सकता। अतिप्रिय वस्तु का नष्ट होना अशांति को उत्पन्न करता है; अतः शांति की स्थापना के लिए 'जियो और जीने दो' का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ तथा अहिंसा ही अमोघशस्त्र के रूप में जाना जाने लगा।

धर्म का प्राण अहिंसा को माना गया है। विश्व के जितने भी धर्म और दर्शन हैं सभी ने अहिंसा के महत्व को स्वीकार किया है और उस पर चिन्तन किया है। प्रायः सभी धर्म अहिंसा की वकालत करते हैं, परन्तु उनका सोच एक समान नहीं है। ईसाईयों की अहिंसा मानव तक ही सीमित है। मानव बचता है तो दूसरे प्राणियों के प्राणहरण करने में उन्हें संकोच नहीं होता। बौद्ध धर्मानुयायी भी अहिंसा के उपासक माने जाते हैं। वे प्राणियों को मारने में तो पाप समझते हैं पर मरे हुए जानवर का मांस खाने से उन्हें कोई परहेज नहीं। सनातन धर्म की अहिंसा भी बस प्राणियों तक ही सीमित है। इन सबसे परे जैन शास्त्रों ने अहिंसा का जितना सूक्ष्म विवेचन किया है, अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। जैनधर्म के प्रसिद्ध तार्किक विद्वान आचार्य समन्तभद्र ने अहिंसा की प्रशंसा में उसे परमब्रह्म की उपमा देते हुए लिखा है – **अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं।**

मत्स्य पुराण में अहिंसा को सर्व धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बताते हुए कहा गया है –

चतुर्वेदेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं सत्यवादिषु।
अहिंसायान्तु यो धर्मो गमनादेव तत् फलम्।।

मत्स्य पुराण / 105–48

अर्थात् 'चार वेदों के अध्ययन से या सत्य बोलने से जितना पुण्य प्राप्त होता है उससे कहीं अधिक पुण्य प्राप्ति अहिंसा के पालन से होती है।'

नारद पुराण में भी अहिंसा की महिमा का बखान करते हुए कहा गया है –

अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी।
कर्म–कार्य–सहायत्वमकार्यं परिपन्थता।।

नारद पुराण / 16–22

अर्थात् 'हे राजन् ! वह अहिंसा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा पापों से छुड़ाने वाली है।'

सुप्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी अहिंसा को परमधर्म निरूपित किया है –

परम धरम श्रुति विदित अहिंसा
पर निन्दा सम अघ न गरीसा।

रामचरित मानस / उत्तरकाण्ड / 120–ख

विक्रम की दशमी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए क्षत्रिय कुलोत्पन्न आध्यात्मिक संत गहन चिन्तक दिगम्बर जैनाचार्य अमृतचन्द्र ने अपने ग्रन्थ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में अहिंसा का गहन, गंभीर, सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने अंतरंग पक्ष को लक्ष्य में रखते हुए कहा है –

अप्रदुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।। 44।।

अर्थात् 'आत्मा में मोह, राग, द्वेष की उत्पत्ति ही हिंसा है और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न न होना ही अहिंसा है।'

यह तो हुई वेद और पुराणों की बात। अब बात आती है स्वतंत्रता प्राप्ति के मसीहा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और आधुनिक काव्य में व्यक्त अहिंसा की भावना की।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का कथन है – 'पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणीमात्र के प्रति दुर्भाव का अभाव।' गांधीजी ने 26.1.1922 को यंग इण्डिया में अहिंसा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है –

'भूतकाल में युगों तक भारत को यानि भारत की आम जनता को जो तालीम मिलती रही है वह अहिंसा के खिलाफ है। भारत में मनुष्य स्वभाव का विकास इस हद तक हो चुका है कि आम लोगों के लिए हिंसा की बजाय अहिंसा सिद्धान्त ज्यादा स्वाभाविक हो गया है।'

आधुनिक काव्य में मुख्यतः गांधीवादी विचार दर्शन के कारण अहिंसा की छाप दिखाई देती है। सुमित्रानन्दन पंत ने अहिंसा को शुभ मानते हुए लिखा है –

सक्रिय मुखर अहिंसा को अब, सत्याग्रह का कर आवाहन।
मूक अहिंसा का युग बीता, वह थी जनशिक्षा का साधन।।

श्री बालकृष्ण षर्मा 'नवीन' लिखते हैं –

मेरे सत्य अहिंसा में है गति उद्यम बल ओज निराला।
मैं हूँ महा क्रांतिदर्शी नर, मेरी क्रांति विकट विकराल।।

महाकवि जयशंकर प्रसाद **जियो और जीने दो** के सिद्धान्त से पूर्णतः सहमत थे। वे इसी भाव को कामायनी में श्रद्धा के माध्यम से निम्न प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

हिंसक से रक्षा करे शस्त्र
पर जो निरीह है – जीकर भी कुछ
उपकारी होने में समर्थ
वे क्यों न जियें उपयोगी बन
इसका मैं समझ सकी न अर्थ

इसीप्रकार ठाकुर गोपालशरण सिंह ने गांधीजी पर लिखित अपने महाकाव्य 'जगदालोक' का अन्त इन पंक्तियों से किया है –

अहिंसा का कर दिव्य प्रयोग, चित्त में तुमने की जो क्रांति।
उसी के फलस्वरूप सुख मूल, प्राप्त हो सकती है चिरशांति।।

यही नहीं अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डॉ. बल्देवप्रसाद मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, डॉ. हरिशंकर शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अम्बिकाप्रसाद, भवानी प्रसाद मिश्र आदि के काव्यों में यत्र–तत्र अहिंसा सिद्धान्त को अभिव्यक्ति मिलती है। सुभद्राकुमारी चौहान भी अहिंसात्मक साधनों में अपनी आस्था उडेलती हुई लिखती हैं –

हमारी प्रतिमा साध्वी रहे, देश के चरणों पर ही चढ़े
अहिंसा के भावों में मस्त, आज यह विश्व जीतना पड़े।

राजेन्द्रसिंह रघुवंशी का कथन है –

दिखलाओ वह शक्ति, आसुरी वृत्ति सभी मिट जाए।
भिड़ो अहिंसा शांति अस्त्र से, यशकेतन लहराए।।

इसप्रकार हमें अहिंसा की चर्चा सर्वत्र देखने को मिलती है। यह तो सर्वविदित ही है कि वर्तमान युग विज्ञान का युग है। 19वीं 20वीं शताब्दी में विज्ञान ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की है। ऐसे–ऐसे यंत्रों का आविष्कार हो गया है कि जिनसे जहाँ एक ओर विश्व का संरक्षण हो सकता है तो दूसरी ओर उन्हीं में विश्व संहारण की क्षमता भी है। हिंसा–प्रतिहिंसा का जघन्य ताण्डव अनेक प्रश्नों को जन्म देता है तथा अनेक आशंकाओं से आतंकित करता है। 20वीं शताब्दी में दो विष्वयुद्ध और अनेक युद्ध हुए उनकी त्रासदी से मानवता बार–बार कम्पित हुई है।

इस सदी में विज्ञान की गति और तीव्र होगी, परन्तु लगता नहीं कि इसका लाभ समूची मानव जाति को मिलेगा। आज प्रत्येक व्यक्ति व राष्ट्र शांति की इच्छा रखता है, परन्तु सही मार्ग व सही साधन का चुनाव दोनों ही नहीं कर पाते। हिंसा का प्रशिक्षण व्यापक स्तर पर होता दिखाई दे रहा है, परन्तु अहिंसा के प्रशिक्षण की कोई तैयारी दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती। शस्त्रों के निर्माण प्रयोग व परीक्षण के लिए बड़ी बड़ी योजनाएं व कार्यक्रम चल रहे हैं। हिंसा में विश्वास रखने वाली अनेक सेनाएं तैयार हैं। अहिंसा का चिन्तन केवल परिणाम की भयानकता को देखकर होता है, उसका स्वतंत्र चिन्तन न के बराबर है। विभिन्न राष्ट्र और जातियों के मध्य हिंसामूलक व्यवहार की प्रमुखता है। स्वार्थपरता, बेईमानी और धोखेबाजी ये भी हिंसा के ही प्रतिरूप हैं। इनमें रहते हुए राष्ट्र, जातियों में मैत्री की कल्पना करना दिवा स्वप्न है। भ. महावीर द्वारा प्रतिपादित जियो और जीने दो का सिद्धान्त व्यक्तिपरक तो है ही जातियों और राष्ट्र के लिए भी उपयोगी है। जब तक इस सिद्धान्त पर अमल नहीं किया जाता विश्व की समस्यायें नहीं सुलझ सकतीं। विष्व की समस्यायें सुलझाने के लिए जहाँ एक ओर राष्ट्रों की शासन प्रणाली में परिवर्तन अपेक्षित है वहीं दूसरी ओर सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में भी सुधार की आवश्यकता है। इसप्रकार के सुधार व परिवर्तन अहिंसा के सिद्धान्त को जीवन पथ के रूप में स्वीकार कर लेने पर ही संभव है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बल प्रयोग के आधार पर मानवीय संबंधों की भित्ति कभी खड़ी नहीं की जासकती।

अहिंसा सुख शांति और विश्व जीवन का मूल मंत्र है। अहिंसा प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी है। हिंसा का ताण्डव नृत्य जब–जब हुआ है संसार कांप उठा है, ऐसे समय निःशस्त्रीकरण का भाव और सिद्धान्त युद्धों और हिंसा की सघनता

से प्रसूत होता है। कलिंगयुद्ध के भयंकर नरसंहार, रक्तपात और प्रलयंकारी विनाश की त्रासदी के पश्चात् सम्राट अशोक इतने अधिक विचलित और व्यथित हो उठे थे कि युद्ध में विजयी होने के पश्चात् भी उन्होंने सपरिवार बौद्धधर्म को स्वीकार कर लिया था, जिसके मूल सिद्धान्त अहिंसा पर ही आधारित हैं।

अहिंसा का मूल आधार प्रेम और आत्मसाम्य है। घृणा विनाशकारी शक्ति है और प्रेम सृजनशील। यदि हम किसी को अपने वश में करना चाहते हैं तो हिंसा और शक्ति द्वारा यह कार्य एक क्षण में कर सकते हैं, किन्तु अहिंसा द्वारा मानव आत्मा के ऊपर अधिकार कर सकता है, जो हिंसा या शक्ति द्वारा बिल्कुल भी संभव नहीं है। प्रेम रूपी अहिंसा का शस्त्र ऐसा है जो जड़ और चेतन सभी पर अपना अधिकार कर सकता है। जीवन में प्रेम को प्राथमिकता प्रदान कर हम अहिंसात्मक शासन व्यवस्था की नींव डालकर शान्ति स्थापित कर सकते हैं। इससे पारस्परिक सद्भाव बढ़ेगा लूटमार और झगड़ों की इतिश्री होगी तथा मानव निस्वार्थ सेवा मे लीन होकर शुभ आचरण द्वारा धरती पर स्वर्ग का निर्माण करेगा। दुख के परिहार और सुख के स्वीकार के लिए अहिंसक जीवन शैली को अपनाकर संघर्षमय जीवन से संतप्त मानव सुख की शीतल छाया में शांति प्राप्त कर सकता है। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की यह पंक्तियाँ आज के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक दिखाई देती हैं –

तुम निर्माण नहीं कर सकते फिर क्यों नाश करोगे।
जीवन देकर जियो, मारकर क्या तुम नहीं मरोगे।।

पूर्व राष्ट्रपति प्रमुख चिन्तक सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन ने अहिंसा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – यह जमाना हथियार बंद कायरता का है। कायरता ने अपने हाथ में हथियार इसलिए रखे हैं कि वह दूसरों के हमलों से डरती है और स्वयं हथियार इसलिए नहीं चलाती क्योंकि उसे हिम्मत नहीं होती। जो डर के मारे हथियार चला नहीं पाते उसी का नाम कायरता है। इस कायरता से उबारने वाली एक ही शक्ति है उसका नाम है अहिंसा। अहिंसा की शक्ति को समर्पित किसी कवि की इन पंक्तियों को व्यक्त कर विराम लेता हूँ –

शक्ति अहिंसा की, पत्थर के दिल पिघला सकती है,
कट्टर दुश्मन को भी अपना, दोस्त बना सकती है।
कभी किसी का दिल न दुखाऐं, करें सभी से प्यार,
अपने दुश्मन के प्रति भी, रक्खें शुद्ध विचार।।

●

जैन पत्रकारिता के प्रकाश-स्तम्भ

इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन-२

- अखिल बंसल

उ.प्र. के बागपत जिले के ख्वाजा नगला नामक छोटे से ग्राम में ६ फरवरी १९१२ को गोयल गोत्रीय बीसा अग्रवाल परिवार में पारसदास जैन एवं रामकटोरी की प्रथम संतान के रूप में आपका जन्म हुआ। मेरठ के जैन मंदिर की पाठशाला और पाण्डेजी की चटशाला से विद्यारंभ करके मेरठ व आगरा में शिक्षा ग्रहण कर इतिहास, राजनीतिशास्त्र और अंग्रेजी में एम.ए. तथा एल.एल.बी. की उपाधि ग्रहण की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से सन् १९३२ में आपने इतिहास विशारद की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच.डी करने के उपरान्त आपने साहित्य साधना का व्रत ले लिया। शीघ्र ही आप जैनधर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, कला व पुरातत्व के मर्मज्ञ विद्वानों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठापित हो गए। १२ फरवरी १९२९ को मास्टर उग्रसेन कंसल की पुत्री अनन्तमाला से आपका विवाह हुआ। आपने शासकीय सेवा में संकलन अधिकारी एवं उप सम्पादक के पद पर रहते हुए अत्यन्त परिश्रम और कुशलतापूर्वक २२ जिलों के गजेटियर तैयार कर ख्याति अर्जित की। १९७२ में शासकीय सेवा से ससम्मान रिटायर हुए।

'जैनधर्म के मर्म की अनोखी सर्वज्ञता' आपका प्रथम प्रकाशित आलेख था जो १९३३ में जैनमित्र में प्रकाशित हुआ था। आपके दो हजार से अधिक लेख व शोध पत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए तथा लगभग ५० छोटी-बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन किया। आपने अनेक जैन-अजैन पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया जिनमें मानसी, जैन सिद्धान्त भास्कर, जैन संदेश, अनेकांत, वीर, अहिंसावाणी, वॉयस ऑफ अहिंसा (अंग्रेजी), जैन गजट व जैन दर्पण प्रमुख हैं। पत्रकारिता आपका रुचिकर विषय था। आप स्वयं लिखते हैं -

'पत्रकारिता से मेरा संबंध लगभग एक आधी सदी का है। यों मैं कभी किसी पत्र-पत्रिका का मालिक, प्रकाशक या व्यवस्थापक नहीं रहा; जो भी संबंध रहा है, वह मात्र सम्पादक या लेखक के

रूप में ही रहा है सो भी सर्वथा अवैतनिक और स्वान्तः सुखाय। पढ़ने का व्यसन मुझे बचपन से रहा, उससे कुछ कम बल्कि काफी कम लिखने का भी।'.....'साहित्य सृजन या पत्रकारिता को आजीविका अथवा आर्थिक लाभ का साधन मैंने कभी नहीं बनाया। वैसे, जहां तक मैं समझता हूं, बहुभाग जैन पत्रकारों एवं साहित्यकारों की प्रायः यही स्थिति है।'

जैन पत्रकारिता के संबंध में आप लिखते हैं - 'कुल मिलाकर जैन पत्र-पत्रिकाओं का स्तर संतोषप्रद है, यह कहना कठिन है। निर्भीक समीक्षा, स्वस्थ विचारशीलता, सहानुभूतिपूर्ण तथ्यपरक समालोचना, सुधारप्रियता, प्रगतिगामिता, विचारोत्तेजक स्वतंत्र चेतना, सम्यक् मूल्यों का युक्तियुक्त सुरूचिपूर्ण एवं शिष्ट भाषा में प्रसार इत्यादि समयानुसार वांछित तत्व जैन पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा, कभी-कभार अल्प परिमाण में ही प्राप्त होते हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या और क्षेत्र भी सीमित है। लेखकों को कहीं कोई प्रोत्साहन नहीं है। हमारी समझ में समाज के प्रबुद्ध वर्ग को इस संबंध में गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

अनेकांत के सम्पादक पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार के विषय में आप लिखते हैं - 'पं. जुगलकिशोर मुख्तार तो मेरी दृष्टि में अपने युग के और अपने ढंग के अद्वितीय निष्ठा सम्पन्न खोजी-शोधी साहित्यगवेषी समालोचक थे। उन जैसा सम्पादकाचार्य जैन समाज में अब तक अन्य नहीं हुआ।'

आपने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र के माध्यम से शोध पुस्तकालय स्थापित किया। इसके साथ ही चतुर्मासिक 'शोधादर्श' का प्रकाशन व सम्पादन किया। जिससे समाज में एक विशिष्ट स्थान बनाया। आपको अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया। आपके डॉ. शशिकांत व रमाकांत दो पुत्र थे जिनमें रमाकांत का स्वर्गवास हो चुका है। श्री अजितप्रसाद जैन आपके लघुभ्राता थे। ११ जून १९८८ को डॉ. ज्योतिप्रसादजी का निधन हो गया। ●

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक एवं मुद्रक अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ, जयपुर के लिए सम्पादक अखिल बंसल द्वारा प्रिन्टोमैटिक्स, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा जयपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित।